सहज मार्ग के सारगर्भित दस नियम

कस्तूरी बहिन

सहज मार्ग के
सारगर्भित दस नियम

कस्तूरी बहिन

प्रथम संस्करण : अगस्त, 2002
500 प्रतियाँ

मूल्य : Rs. 50/-

प्रकाशक : श्री जी.डी. चतुर्वेदी
सी - 830-ए, पारिजात
एच रोड, महानगर,
लखनऊ। (उ.प्र.)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक : ऐन्टेक्स प्रिंटर्स
10-ए, बटलर रोड,
डालीबाग, लखनऊ। (उ.प्र.)
दूरभाष : 207920, 205070

विषय-सूची

क्रमांक		पृष्ठ संख्या
1.	दो शब्द	1
2.	समर्पण	3
3.	परिचय	6
4.	पहला नियम	9
5.	दूसरा नियम	12
6.	तीसरा नियम	21
7.	चौथा नियम	28
8.	पाँचवा नियम	36
9.	छठा नियम	40
10.	सातवाँ नियम	44
11.	आठवाँ नियम	47
12.	नवाँ नियम	51
13.	दसवाँ नियम	56
14.	उपश्रृंगार	62
15.	एक दिव्य रहस्य अवतारों का	65
16.	एक नज़ारा (गीत)	67
17.	आभार नहीं प्यार	68

"दो शब्द"

आज मेरे पास खुशी के दो शब्द भर ही शेष हैं, अर्थात् "उनकी मुस्कान" जिसमें कुल साधना का रहस्य पाकर, डूब जाने के लिये तपस्विनी बनी मैं हर पल इस घड़ी के आने की प्रतीक्षा में पलकें बिछाये बैठी थी। लेखिनी जिनका स्पर्श पाकर कुछ लिख लेती और, फिर कुछ और लिख पाने के लिये पुनः उठ जाती, उनका दिव्य–स्पर्श पाकर वह लिखती रही, फिर चुप होकर बाट जोहती रही, कुछ आगे लिख पाने के लिये शब्दों के संकलन हित। हृदय की दृष्टि भी लय होकर मानो लगन ही बन गई परन्तु लेखिनी न रुकी, न थमी क्योंकि दिव्य-विभूति का स्पर्श उसे थामे हुये था। थामना भी तो उनकी ही जिम्मेदारी थी क्योंकि उनके प्रथम दर्शन का यह प्रथम वाक्य था कि "मैं भी तो अर्से से तुम्हारे इंतजार में था" दूसरे "कस्तूरी, जो दुनियाँ की थी वह मर चुकी है, जो अब है वह 'मेरी' है।" तीसरे "तुम मेरे कुल लेखन एवं कथन को एवं तुम्हारे ऊपर की गई मेरी कुल आध्यात्मिक–Research को अपने अनुभव के रंग के लेखन द्वारा उज्ज्वल करो।"

आज मेरे अनुभव के रंग में डूबे मेरे लेखन के दो शब्दों की मेरी परम–खुशी, न जाने कैसे 'उनकी मुस्कान' रूपी दो शब्दों को मानों यह बता रही है कि आज उनकी अर्थात् अपने 'बाबूजी महाराज' की 'अपेक्षा' पूर्ण करके समस्त में उनकी ही प्रत्यक्षता या दर्शन पाकर मानो खुद ही 'उनकी मुस्कान' में खिलकर थिरक उठी है। खुशी के गीत की लय है Divine, ताल है सम अर्थात् balance, और धुन है मेरी यह पुस्तक "सहज–मार्ग के सारगर्भित दस नियम", जिससे 'उनकी मुस्कान' पुलकित होकर आज खिल उठी है। अथवा यूँ कह लें कि मेरी परम–खुशी आज 'उनकी दिव्य मुस्कान, पर बलिहार हो गई है।

सारांश यह है कि सर्वस्व देकर मेरे बाबूजी ने बस इतनी सी ही अपेक्षा मुझसे की थी कि मैं उनकी कुल research का वर्णन समस्त के हित पुस्तक–रूप में रख सकूँ। यह तो थी मात्र इतनी सी अपेक्षा मुझसे जो आज परम खुशी के रूप में पूर्ण होकर 'उनकी' ही दैविक–मुस्कान पर बलिहार हो गई है। किन्तु आज उन दिव्य–विभूति ने अनन्त (Ultimate) की इस पूर्ण यात्रा के दौरान राह में आये अहं के 16 circles एवं जो पर्दे उघारे हैं, जो बाधायें हटाई हैं वे समस्त की प्रगति के लिये सदैव के लिये ही हट गई हैं। इतना ही नहीं है बल्कि पूर्ण दिव्य–रिसर्च (research) में सहज–मार्ग की कुल आध्यात्मिक–शिक्षा को अपनी Divine Power से ओत–प्रोत करके "आफ़ताबे–मारिफ़त" अर्थात् ईश्वरीय–ज्ञान के आफ़ताब (सूर्य) से प्रकाशित कर दिया है।

यही हैं केवल वे 'दो शब्द' यानी "उनकी–मुस्कान" जो मेरी इस पुस्तक "सहज मार्ग के सारगर्भित दस नियम" का प्राण है।

■■■

कस्तूरी बहिन

''समर्पण''

हमारे श्रीबाबूजी महाराज का कथन कि ''चौबेजी तुम्हारी या दुनियाँ की कस्तूरी तो मर चुकी है, अब जो है वह मेरी है।'' क्या किसी ने ऐसी भी 'उलट–बासी' के बारे में सुना होगा कि जिसमें 'स्वीकार' पहले हो गया हो और 'समर्पण' बाद में हुआ हो। भला कौन लेखिनी इस 'मेरी' शब्द के दिव्य–सौभाग्य के समक्ष कुछ भी कह पाने हेतु मुख खोल पायेगी। वास्तविकता तो यह है कि मेरे परम–जीवन–सर्वस्व श्रीबाबूजी ने आदि से लेकर अनन्त (Ultimate) तक की यात्राओं की दशाओं के वर्णन के गौरव को, अपना ही दैविक–स्पर्श प्रदान कर के मेरी लेखिनी को धन्य बना दिया है। इस सत्य तथ्य को भी मैं आज उजागर कर रही हूँ कि 'उनकी' ही दैविक–इच्छा ने मेरे स्मरण का मन्थन करके मेरे द्वारा लिखित पुस्तकों के रूप में जो असलियत के साँचे मोती मुझे अब तक प्रदान किये हैं, उन्हें उनके ही चरणों में समर्पित करके मैंने अपने लेखन को सार्थक हुआ पाया है। किन्तु उनका दिव्य एवं अनूठा प्यार जिसने अपनी इस बिटिया को ''मेरी'' कहकर स्वीकार किया है–वह प्यार क्या है क्या आप जानना चाहेंगे? तो सुनिये। उनके दैविक प्यार में मात्र दिव्य ईश्वरीय–गतियों का फल ही समाया हुआ है। उनका अनूठा दैविक–प्यार, जिसमें समस्त के हित उनकी प्राणाहुति का प्रवाह प्रवाहित रहता है। उनका प्यार जो हमसे कुछ भी नहीं चाहता है। उनका प्यार जो सदैव हमें 'देते रहने' की दीवानगी का ही मानों दिव्य एवं अनन्त श्रोत है। उनका अनूठा प्यार जो अल्टीमेट का वरदान है प्राणीमात्र के हित, जो हमें भूमा के क्षेत्र में अपनी सरस–दैविक–मुस्कान का सहारा देते हुये हमारी अनन्त–यात्रा को पूर्ण करता है। उनका दिव्य–प्यार, जो प्राणी–मात्र को ईश्वर–प्राप्ति का वरदान देने के लिये बेचैन है। मैंने सदैव यही पाया है कि यदि

मैंने एक बार भी उन्हें याद किया तो मानो उनकी प्यार–भरी दृष्टि ने अपने दिव्य–प्यार के शीरे में उसे ऐसा लपेट लिया कि वह याद constant होकर वहीं ठहर गई। जब याद वहीं ठहर गई तो धीरे से जाने कब और कैसे मेरे होने के कुल भाव (अहं) को भी मुझमें से ले गई, और अब मैं यहाँ किससे पूछूँ कि यह कस्तूरी नाम की चलती फिरती पुतली कौन है? कहाँ है इसका ठिकाना? आदि–आदि।

ओ बाबूजी आपने सम्पूर्ण–आध्यात्मिक क्षेत्र में अन्तिम–सत्य की प्रत्यक्षता की गरिमा की सादगी के साथ आदि–प्रकृति की प्रकृति का नकाब या घूँघट उठाकर मानो अपने ही दिव्य–स्थान (ultimate) की प्रत्यक्षता को भी समस्त के हित दर्शाया है। आज आप ही मानों अपनी पुस्तक 'दस उसूलों की शरह' के बारे में लेखन की क्षमता को मेरी लेखिनी में भर रहे हैं। आदि प्रकृति की प्रकृति के साये के प्रतिबिम्ब स्वरूप Divine Nature (प्रकृति) के सौन्दर्य में डूबकर मानों मानवीय–Nature या प्रकृति को श्रेष्ठ Nature प्रदान करने हेतु आज कुल प्रकृति के विज्ञान के गहन–रहस्य का उद्‌घाटन करती हुई मेरी यह पुस्तक –सहज–मार्ग के सारगर्भित दस नियम" अपने श्री बाबूजी महाराज के पावन–चरण द्वय में स्वतः ही समर्पित है। आदि प्रकृति की गरिमा का विज्ञान भूमा की चौखट का स्पर्श पाने पर ही उज्ज्वल होता है जो दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी महाराज का चरण–चुम्बन पा लेने पर ultimate एवं उसकी प्रकृति के भेद के सहित 'उनमें' ही लय हो जाता है। यही समर्पण आज केवल है, जो उनके ही समर्पण है।

कैसा अनूठा है वह वात्सल्य एवं अनुपम प्यार जो मैंने श्रीबाबूजी से पाया है और जो समस्त के लिये दैविक–निमंत्रण के सदृश वातावरण में समा गया है। एक बार आप बोले "मुझे गुरू–दक्षिणा चाहिये।" मैंने कहा, "आप जो चाहें ले लें।" बोले "मैं ले चुका हूँ", मैं नासमझ भला क्या जानूँ , चुप हो गई। क्या दक्षिणा थी मुझे आज

तक पता ही नहीं, और उनकी याद में स्थिर–पलकों को समय भी कहाँ था कुछ भी पता करने का। मेरी यह पुस्तक 'सहज–मार्ग के सारगर्भित दस नियम' मुझसे उनकी अपेक्षा या चाह का मानो यह अंतिम–अनमोल दैविक रत्न है। इसकी खुशी ही आज वास्तविक–दक्षिणा के रूप में मैंने उनके चरणारविन्दों में रख दी है। क्षणिक ही सही–पश्चात् मैंने पाया कि खुशी भी खुद को भूल गई है तो मैंने समझा कि इस नादान, किन्तु नन्हीं सी दैविक–दक्षिणा को उन्होंने स्वीकार कर लिया है पूर्णता की मुहर लगाकर। आज यही साँचा समर्पण है। 'दो शब्द' में लिखित 'उनकी–मुस्कान' को ही जिसने मेरी लेखिनी द्वारा मुझसे 'उनकी' दैविक–अपेक्षा को पूर्ण किया है मेरी यह पुस्तक समर्पित है।

■■■

परिचय

समर्थ सद्गुरू श्री लाला जी महाराज का कथन है कि "चाहे कोई आध्यात्मिकता की चरम सीमा को भी पा गया हो, यदि उसमें अख़लाक़ या सदाचार की कमी है, तो मैं समझूँगा कि उसने आध्यात्मिक–क्षेत्र का स्पर्श ही नहीं पाया है।" श्री बाबूजी ने अपने सहज–मार्ग के दस नियमों को पूर्ण सदाचार के सौंदर्य से ही सजाया है। दस नियमों के सौंदर्य को अपनी रहनी में पाकर ही मानव 'साक्षात्कार' पाने के योग्य होता है। इसीलिए मैंने अपनी इस पुस्तक 'सहज–मार्ग के सारगर्भित दस नियम' में इन्हें आध्यात्मिक–उन्नति का माप–दंड माना है।

श्री बाबूजी महाराज ने अपनी पावन पुस्तक 'मिशन के दस उसूलों की शरह' में आध्यात्मिक–क्षेत्र की आदि से लेकर अन्त तक की कुल रिसर्च को, आदि से लेकर अन्तिम–सत्य तक की प्रत्येक दशा को, दर्शन के रूप में समस्त के हित उजागर किया है। उन्होंने आदि–केन्द्र (Ultimate) की यात्रा को प्राणिमात्र के हित सुलभ करके सहज–मार्ग साधना की अनन्त–यात्रा को भी सरल, सहज एवं भक्ति–रस से सराबोर कर दिया है। उन्होंने एक सत्य को और भी प्रत्यक्ष कर दिया है कि आदि–शक्ति (Ultimate) के क्षेत्र के साथ यदि आदि–प्रकृति की भी कुल खोज (Research) न होती, इसका सहज एवं आदि रहस्य समस्त के लिए उजागर न होता, तो डिवाइन–क्षेत्र की खोज अधूरी ही रह जाती। आज उन्हीं की दिव्य कृपा से आदि–प्रकृति का विस्तृत वर्णन कर पाने की क्षमता को अपने में पा सकी हूँ। यह उनकी ही महती कृपा है कि उनकी मात्र दैविक–इच्छा कि 'मेरी पुस्तकों में, मेरे कथन में आई हुई हर बात, हर पोइन्ट (Point), हर रीजन (Region) के बारे में, खुद के अनुभव सहित तुम लिखोगी ताकि लोग यह न कह सकें कि 'रामचन्द्र कह

तो बहुत कुछ गया किन्तु करके नहीं दिखाया। इसलिए तुम ऐसा लिखो कि आध्यात्मिक–क्षेत्र में आदि से लेकर अन्तिम–सत्य के केन्द्र तक तुम्हारा लेखन अनुभव–सिद्ध हो। उस पर भी यह अलौकिक एवं अनूठी दिव्य कृपा कि पचास वर्ष पहले की अनुभूतिमय दशाओं का वर्णन लिखते समय मुझे ऐसा लगता है कि दशा मानो पारदर्शी के समान मेरे समक्ष है और उसके बारे में मेरे हाथ लिखते जा रहे हैं।

आज मुझे यह लिखते हुये बहुत आंतरिक–आनन्द हो रहा है कि अनुभव आज यह कहने जा रहा है कि श्री बाबूजी महाराज की पुस्तक 'दस उसूलों की शरह' वास्तव मे उनके द्वारा की गई आदि–प्रकृति अथवा दैविक–प्रकृति की कुल खोज (Research) का मानो open वर्णन है या स्वरूप है। मानो आदि (Ultimate) से लेकर धरातल तक की Nature का वर्णन है। अथवा यों कहें कि अलौकिक–दिव्य–प्रकृति से लेकर लौकिक या भौतिक–प्रकृति की अनुपम व्याख्या से ओत–प्रोत सत्य है जो पुस्तक के माध्यम से हमारे समक्ष उतर आया है। हम इस पुस्तक को पढ़ें तो लगता है कि इन नियमों के द्वारा कुल प्रकृति की प्रकृति हमारे समक्ष उज्ज्वल हो गई है; मानो अनन्त दिव्य–प्रकृति से लेकर धरा के मानव–प्रकृति का जो स्वरूप है, शक्ति है, फैलाव है उसका भी सारा रहस्य श्रीबाबूजी ने समस्त के लिये उज्ज्वल कर दिया है। उनका यह कथन उनके लेखन से सिद्ध हो गया है कि "मैं अध्यात्म–विज्ञान" का कोई भेद, भेद नहीं रहने दूँगा।" ऐसा लगता है कि प्रकृति ने ही मानो अपने कण–कण के भेद को अपने स्वामी के समक्ष स्पष्ट करके रख दिया है। एक ओर जहाँ दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी ने अपनी अन्य–पुस्तकों में अध्यात्म–विज्ञान के Research की चरम–सीमा का ब्यौरा समस्त के हित उज्ज्वल किया है उसी प्रकार "दस उसूलों की शरह" नामक अपनी पुस्तक में उन्होंने आदि–प्रकृति के Secrets (रहस्य) का विज्ञान भी समस्त के हित स्पष्ट कर दिया है, जो कभी भी संभव नहीं

हुआ है। क्योंकि अवतार तो प्रकट हुये और अपना कार्य करके चले गये किन्तु "मानव–मात्र के हृदय ईश्वर प्राप्ति की चाह से पुनः भर उठे" ऐसे संकल्प को लेकर दिव्य–विभूति का आज धरा पर आगमन होना इस सत्य को प्रकट करता है कि मानव–प्रकृति को बदले बिना ईश्वर–प्राप्ति असंभव है और आदि–प्रकृति से मिली–जुली जीवन–रहनी के बिना भूमा (Ultimate) तक पहुँच पाना असंभव है।

आज अपने श्रीबाबूजी महाराज के ध्यान में डूबी मेरी यह लेखिनी उनकी दिव्य पुस्तक "दस उसूलों की शरह" या "Ten commandments of Shri Ramchandra Mission" के नियमों की आंतरिक–दशा का दैविक स्पर्श पाते हुये ही इस विषय में कुछ लिख पाने का साहस जुटा पाई है। सत्य तो यह है कि कृपा उनकी है, स्पर्श उनका है बस लेखिनी मेरे हाथ में है जो उनका ही दिव्य–मुख निहारती हुई ही कुछ बोलना चाह रही है।

■■■

पहला नियम

सुबह सूरज निकलने से पहले हर भाई उठे और संध्या–उपासना यथा सम्भव सूरज निकलने से पहले निश्चित् समय पर खत्म कर दे। पूजा के लिए एक अलहदा जगह और आसन मुकर्रर कर ले। जहाँ तक हो सके एक ही आसन पर बैठने की आदत डाले। शारीरिक और मानसिक पाकीज़गी का ख़ास ध्यान रक्खे।

साधारणतः जब भी कोई साधना अपनाते हैं तो सबसे पहले हमें शारीरिक और वाह्य सफ़ाई का विचार अधिक रहता है। जब ऐसा विचार आता है तो प्रातः नहाने पर, जल्दी से जल्दी उठ कर पूजा, ध्यान करने में न तो हमें हिचक होती है और न सुस्ती आती है क्योंकि हमारे अंदर इस विचार से एक स्फुरण पैदा हो जाती है, और यह स्फुरण हमें आलस्य से बहुत दूर कर देती है। तत्परता ऐसी रहती है कि प्रातः जागने के लिये हमें घड़ी की आवश्यकता नहीं रहती है। विचार की गर्मी से अंतर में मानो एक तपिश सी उत्पन्न हो जाती है, और तपिश की ऊर्जा ही पूजा की तत्परता को जन्म देती है। चाहे रामायण का पाठ हो या जाप हो, यहाँ तक कि ब्रत–त्यौहारों पर भी हममें एक विशेष ऊर्जा रहती है जो हममें थकान या सुस्ती को नहीं आने देती है, परन्तु यह समय और दिन से सम्बद्ध होती है। एक ही आसन से बैठने पर उपासना में ध्यान की चंचलता क्रमशः कम होती जाती है। यद्यपि यह अवश्य है कि विचार से सम्बन्धित रहने के कारण यह मात्र mind या मस्तिष्क तक ही सीमित रहती है। सहज–मार्ग साधना में श्रीबाबूजी ने अभ्यासी को अंतर में ईश्वर के ध्यान में सजग रहने का लक्ष्य दिया है इसलिये इसमें इसका रूप बदल जाता है। श्रीरामचन्द्र मिशन के अंतर्गत सहज–मार्ग में ध्यान की प्रक्रिया द्वारा जब अभ्यासी हृदय में ईश्वरीय–आभास का अनुभव जाग उठता है तो मानो ऊर्जा, शक्ति के रूप में बदल जाती है और प्रकृति, ईश्वरीय–प्रकृति में ढलना शुरू हो जाती है।

सहज–मार्ग साधना में श्रीबाबूजी ने अभ्यासी को अंतर में मौजूद ईश्वर के ध्यान में सजग रहने का सतत् अभ्यास दिया है इसलिये इसमें वाह्य–ऊर्जा का स्थान बदल जाता है। साधना में ऐसे ध्यान की प्रक्रिया द्वारा जब अभ्यासी–हृदय में Divine attachment की ऊर्जा मिलने लगती है, तो वाह्य–तत्परता के साथ वह (ऊर्जा) अंतर में Divine से अपनाइत के सम्बन्ध को कुरेदना आरम्भ कर देती है। क्रमशः ऐसी कुरेदन से उत्पन्न हुई दैविक–तपिश, ईश्वरीय–सामीप्यता की चाह तो बढ़ाती जाती है किन्तु हमें खुद से मानों अलग करना शुरु कर देती है अर्थात् हमें अपने होश से बेख़बर रहने की दशा में मोड़ देती है। अब यों कहें कि वाह्य में ऊर्जा की तत्परता हमें वाह्य में फैलाव देने का कार्य करती है। पूजा–पाठ में बढ़ोत्तरी और उसी ओर की फिक्र से mind को वैसे ही विचार घेरे रहने लगते हैं, यह अवश्य है कि मानव–प्रकृति को अन्यथा सोचने से रोकने लगती है। कदाचित् इसीलिये पहले पूजा पाठ में लिप्त रहने पर मैंने पाया था कि तबियत में धीरे–धीरे चंचलता की जगह ठहराव सा आता जाता था परन्तु नियन्त्रण (control) अपना ही होने के कारण वह सीमित ही रहता था।

सहज–मार्ग साधना द्वारा आध्यात्मिक–क्षेत्र में मानव का लक्ष्य दिव्य–साक्षात्कार पाना जब स्वतः ही अंतर में दृढ़ हो जाता है तो फिर वह धारणा से ऊपर ईश्वरीय–ध्यान में रत रहने लगता है। मानव प्रकृति ऊर्ध्व से सम्बन्धित रहने लगती है–मानो अब वह मानव नियम के बंधन से मुक्त होने की दिशा में आ खड़ी हुई है। ईश्वर प्राप्ति के लक्ष्य में खोया हुआ, एवं ईश्वरीय–धारा (Divine Transmission) के प्रवाह में नहाया हुआ हमारा मगन–मन, अब पाकीज़गी (पाकीज़गी) की रहनी से दामन को (अंतर को) भर लेता है। अंतर की ऐसी पाकीज़गी की दशा एक दिन हमारे श्रीबाबूजी

के दिव्य Transmission के प्रभाव से अभ्यासी के पूर्ण सिस्टम को विशुद्धावस्था में डुबो देती है। और श्रीरामचन्द्र मिशन की सहज–मार्ग साधना पद्धति का प्रथम नियम, हमारे प्रवेश को अब दूसरे नियम की दशा में भिगो जाता है।

■■■

➲ ईश्वर ने अपने को तुम्हारे हृदय के भीतर छुपा लिया है और तुम्हें आगे खड़ा कर दिया है। तुम अपने को छुपा लो और ईश्वर को सामने ले आओ। यही वास्तविक–साधना है।

– श्री बाबूजी

दूसरा नियम

पूजा प्रार्थना से शुरू की जावे। प्रार्थना आत्मिक–उन्नति के लिये होना चाहिये, और इस तरह कि हृदय प्रेम से भर आवे।

श्रीबाबूजी का कथन कि "जितना श्रेष्ठ–लक्ष्य हमारे समक्ष होता है उतनी ही श्रेष्ठता उसे प्राप्त करने की हमारे ध्यान में प्रवेश पाती जाती है। ईश्वर–प्राप्ति का दिव्य–लक्ष्य देकर मानो उन्होंने हमें अपने दामन के साये में शरण देदी है। मिशन के दस नियमों के माध्यम से मानो उन्होंने दैविक–सौन्दर्य की सज्जा को धारण कर पाने का हम अभ्यासियों को निमंत्रण दिया है। दस नियमों में समाई दैविक–दशा ईश्वर–प्राप्ति के ध्यान में डुबोती हुई हमारे अंतर को अपने सौन्दर्य से सजाती हुई हमें लक्ष्य–प्राप्ति के योग्य बनाती जाती है। अपने श्रीबाबूजी का दामन थामकर चलते रहने से हमें ईश्वरीय ध्यान की गहराई में डूबे रहने की सतत्ता का वरदान मिलता है। ईश्वरीय–शक्ति के आदि श्रोत (Ultimate) से संसार के श्रृंगार हेतु धरा पर उतरी दिव्य–विभूति का सामना पाकर ही हम दैविक–सज्जा से सँवर जाते हैं। अनुभव दिव्य–आकर्षण की कड़ी बन जाता है जिसके द्वारा अभ्यासी की आंतरिक–दृष्टि एवं अनुभूति को ईश्वरीय–गतियों की रसानुभूतियों के साथ ही ईश्वरीय–समीप्यता का वात्सल्यमय सेंक भी सतत् रूप से मिलता रहता है। एक सच्चाई और स्पष्ट हो जाती है कि हमारे अंदर 'स्व' (self) इस तरह से पिघल जाता है कि दैविक सौंदर्य के दसों–सोपानों (दस नियम) की दैविक–दशा की अनुभूति के दैविक–रस में हमारे होने के भाव (अहं) को लय कर देता है। ऐसे ही आगे उन्नति पाते हुये अपने श्रीबाबूजी की प्यार भरी दृष्टि में पगते हुये उनकी दिव्य ईश्वरीय–धारा का प्रवाह एक दिन हमें ईश्वरीय–मुख्य केन्द्र बिन्दु में डुबो देता है। हमारी प्रलय हो जाती है – मानो हमारी

'प्रार्थना' या 'आत्म–निवेदन' स्वीकार हो जाता है। अर्थात् अपने होने का वह पृथक भाव भव–सागर या creation से उबरकर creator अर्थात् ईश्वरीय–केन्द्र में समा जाता है। इस प्रकार अभ्यासी–मन 'प्रार्थना' के प्राण में डूबकर ऐसा आज़ाद हो जाता है कि आज़ाद होने का होश भी उससे दूर भाग जाता है।

अपने मिशन के दूसरे नियम की वास्तविक दशा में प्रवेश पाकर अंतर आत्म–विभोर हो उठता है। यह आश्चर्य भी मैंने पाया है कि जबसे अंतर में ईश्वरीय–मौजूदगी का अनुभव होने लगता है बस तब से ही मानो अंतर आत्म–निवेदन की दशा में पगा रहने लगता है। मानो प्रार्थना ने अपने प्राण (mood) को प्रियतम पर ही न्यौछावर कर दिया है। अब प्रार्थना कौन करे और किससे करे। अब हृदय में ईश्वरीय–अनुभूति का सतत्–आभास मानो हमारे आत्म–निवेदन को स्वीकार करके हमें मानो प्रार्थना का स्वरूप ही बना देती है। सच भी है कि श्रीबाबूजी के कथनानुसार जिसे उसकी (ईश्वर) खोज की लोनी लग जाती है फिर उसे उसके ध्यान के बिना कुछ अच्छा ही नहीं लगता है। क्रमशः उसके ध्यान पर से संसार का नक्शा मिट जाता है और ध्यान ईश्वरीय–रंग में रंग जाता है। बस तभी से हमारा अभ्यासी–हृदय मानो उसकी मौजूदगी का ध्यान न भूलने की प्रार्थना में स्वतः प्रार्थी बनकर हृदय में ध्यान का बन्दी होकर भी अहं से आज़ाद हो जाता है। इतना ही नही हृदय की शुद्धता के फलस्वरूप हर वाह्य परिस्थिति में रहते हुये हमें ऐसा प्रतीत होता है कि ध्यान द्वारा हृदय में बिराजे ईश्वर का संग पाकर मानो हम शक्ति–मय बन जाते हैं। अजीब अंतर–दशा पनप उठती है कि एक ओर तो हर समस्या में शक्ति रूप हुआ मन मानो दृढ़ता का प्रतीक हुआ रहता है और दूसरी ओर आत्मिक–दशाओं के परमानन्द में मगन मन अपनी पृथकता ही खो बैठता है। श्रीबाबूजी का कथन हमारे लिये चरितार्थ हो जाता है कि "हम जैसे आये थे वैसे ही हो जायें।" क्योकि

ऐसा लगता है कि सहज–मार्ग–साधना में विरासत में पाई हुई ईश्वरीय–गतियाँ ही मानो हमारा मन हो जाता है। आप देखें कि हमारी साधना का आरम्भ तो वाह्य–शुद्धता की रहनी से होता है फिर क्रमशः अंतर–मन ध्यान में डूबी रहनी का अभ्यास करते–करते, ईश्वरीय–धारा में स्नान करते हुये सहज–मार्ग–साधना के तीनों अंग ध्यान, सफ़ाई और प्रार्थना की रहनी से ओत–प्रोत हुई मानव–जीवन–रहनी को आध्यात्मिक–जीवन–रहनी बना देता है। मानव–जीवन धन्य हुआ लगने लगता है। इसी से मेरे अनुभव ने पाया है कि मिशन के दस नियमों के पालन से अधिक सहज–मार्ग–साधना में जब हमारा विचार एवं ध्यान रम जाता है तबसे अपने श्रीबाबूजी द्वारा हृदय में पाई पावन–प्राणाहुति की धारा–प्रवाह में सतत्–स्नान पाकर अंतर नियम–पालन के परिणामों के दैविक–सौंदर्य से स्वतः ही सजने लगता है, और अपने सौंदर्य से मानो मिशन के दूसरे नियम को चुनौती दे देता है।

अपने श्रीबाबूजी महाराज का यह कथन मुझे इतना प्रिय एवं सारगर्भित लगता है कि ''ध्यान में डूबे अभ्यासी का परिचय स्वयं यह बोल उठे कि वह श्रीरामचन्द्र मिशन का अभ्यासी है।'' आज मेरा अनुभव सबको पुकार कर यह स्पष्ट कर देना चाहता है कि सहज–मार्ग के दस नियमों के दैविक–सौंदर्य का प्रतीक स्वयं अभ्यासी ही बन जाता है। इतना ही नहीं अपने मिशन की गरिमा का भी वह जीता–जागता प्रतीक होता है। हमारी कुल रहनी, वाणी एवं व्यवहार में ऐसा स्वाभाविक आत्मिक आकर्षण पैदा हो जाता है कि हम अपने मिशन की साधना के तीनों अंग, ध्यान, सफ़ाई एवं प्रार्थना के मानो स्वरूप ही हो जाते हैं। अर्थात् हमारी जीवन–रहनी में दिव्य–प्रेम के आकर्षण द्वारा मानो हमारा मिशन स्वयं सजीव हो उठता है जिसमें साधना के तीनों अंग एवं मिशन के दस नियमों के सौंदर्य का अंकन किया जा सकता है। गीता में वर्णित श्रेष्ठ–दशा ''स्थिति–प्रज्ञ'' की

मानो सजीव व्याख्या बन कर ध्यान हमारे अंतर का सजग–प्रहरी बन जाता है, जिससे ईश्वर–प्राप्ति के लक्ष्य की बहती हमारे अन्तर मन की धारा सदैव और सतत् रूप से उन्नति–पथ पर बढ़ती ही जाये।

प्रिय पाठक बन्धुओं यह पुस्तक तो मैं लिखने का प्रयास कर रही हूँ किन्तु इसके लेखन में मगन सुधि को यह भी भूलने लगता है कि कब, कहाँ और कौन सा नियम मेरे लेखन में अपने सौन्दर्य को प्रवेश दे जाता है। सच तो यही है कि जब सतत् स्मरण द्वारा विचारों की रहनी का स्थान हमारा मस्तिष्क न रहकर जब आत्मा से सम्बन्धित हो जाता है तब से विचारों को आत्मा से शक्ति मिलने लगती है जो इनका मूल है। तब से ही इन्हें आत्मिक–दशा की रसानुभूति के बिना सब फीका लगने लगता है। तभी से समझना चाहिये कि अभ्यासी का अभ्यास सफ़ल हो गया है क्योंकि अब अभ्यास के फल–स्वरूप Constant Remembrance का धागा Divine से जुड़ जाता है और 'श्रीबाबूजी' के कथनानुसार अभ्यासी के लिये आध्यात्मिक–क्षेत्र में यात्रा का द्वार खुल जाता है। श्री बाबूजी द्वारा लिखित प्रेम व अभ्यास की तीनों श्रेष्ठ–धारायें इस द्वार में प्रवेश देकर मानो वहीं विलय हो जाती हैं। इनका नाम उर्दू भाषा में श्रीबाबूजी ने इस प्रकार दिया है "इब्द, मोबिद (प्रपन्न) मोबिद–उल–इबाद (प्रभु–प्रपन्न) जो अपने सौंदर्य से हमारा श्रृंगार करके आध्यात्मिक–क्षेत्र में हमें प्रवेश दे देती है और अब अनन्त यात्रा का मार्ग प्रशस्त होकर हमारे समक्ष में फैला हुआ दिखाई देने लगता है और चैन आगे के ठहराव के सारे स्थानों को छोड़कर हमें हमेशा के लिये craving में भिगो कर चला जाता है। कदाचित् चुपके से हमें यह भी बता जाता है कि अब यह बेचैन ही तेरे लिये चैन है। प्रियतम (ईश्वर) की समीप्यता का दैविक–सेंक अब निरंतर हमारे में भरा रहने लगता है और यह Divine सेंक मिलने से मैंने पाया कि तब से मानो अपने होने का भाव पिघल कर Divine की प्रतीति खुद हम में भरने लगती है। इसे

आध्यात्मिक–क्षेत्र कहूँ या Divine क्षेत्र कहूँ क्योंकि दैविक–सामीप्यता की अनुभूति यहाँ कुछ ऐसी समाई हुई है कि 'हम हैं' इस होश की तो यहाँ मानो गम्य ही नहीं होती है। कदाचित् इसीलिये भक्तों ने कहा है कि ''प्रेम गली अति साँकरी या में द्वै न समांय।'' किन्तु यहाँ की बेसुध–अनुभूति का कहना तो ज़रा सुन लीजिये कि एक ओर तो Divine क्षेत्र के अनन्त–पसारे का दर्शन यहाँ विद्यमान है और दूसरी ओर यहाँ अपने होने के भाव (ego) के होश को, होश में आने की गम्य ही नहीं है। यहाँ तक कि यदि 'मैं' कहूँ तो शब्द 'मैं' अकेला खड़ा रह जायेगा। फिर आप ही बतायें कि यहाँ कैसे रहा जाय? अरे! तो लीजिये अपने श्रीबाबूजी की दिव्य–मुस्कान के ''सम्मुख' तब कोई साया नहीं पहुंच सकता है तभी वह अकेला खड़ा 'मैं'' शब्द छाया रहित श्रीबाबूजी की मुस्कान मय बन जाता है। कदाचित् इसीलिये यह अनुपम Divine अनन्त–यात्रा का क्षेत्र हमारे लिये हमारे बिना भी परमानन्द–मय–क्षेत्र बन जाता है। अब देखें कि 'उनकी' सामीप्यता के इस दैविक–क्षेत्र ने हमारे, हमको अपनी मुस्कान में भर लिया तो अब हम कहाँ जायें? आखिर हम वहीं तो जायेंगे जहाँ तक इस दैविक–मुस्कान का विस्तृत–क्षेत्र हमें अनन्त–यात्रा के लिये नेह–निमंत्रण दे रहा है। कहते हैं कि 'माँ यशोदा ने भगवान–कृष्ण के मुख में उनका विराट्–दर्शन पाया था।' आज मैं क्या लिखूँ–कि मैंने यहाँ अन्तिम–सत्य से उतरी दिव्य–विभूति के मुस्कान में अनन्त–यात्रा का दर्शन पाया है।

अब अभ्यासी ने हृदय में ईश्वरीय–संग में डूबे रहने के अभ्यास द्वारा 'उसकी' समीप्यता का क्षेत्र पा लिया है अथवा हमारे अभ्यास की कोशिश ने 'उन्हें' हमारे समक्ष ला खड़ा किया है। श्रीबाबूजी का कथन कि ''हमने जीवन–भर 'उनकी' मज़दूरी (मिलन की कोशिश) करने का ठेका नहीं लिया है''–उनका (ईश्वर का) देश मिल गया तो मज़दूरी समाप्त हो गई। अब तो 'उसकी' मज़बूरी है कि

अपनी शरण में, अपने देश में हमें प्रवेश दे। हमें वहाँ की सज्जा से सजायें, एवं वहाँ की दैविक–रहनी का योग हमें प्रदान करें, तभी 'उनकी' ही याद का यह सुन्दर फल हमें मिला कि हर श्रृंगार की दशा का आभास 'वे' मेरे अनुभव में भरते गये–तभी मेरी अनन्त–यात्रा की पुस्तक अपना मुख खोल सकी है। वास्तव में (दिव्य–विभूति) की तरफ़ के प्रेम की इस उलट–वासी ने ही आज प्राणी–मात्र के लिये ईश्वर–प्राप्ति के बाद 'सत्य–पद' का द्वार भी सदैव के लिये खोल दिया है। प्रत्येक–क्षेत्र के द्वार के साथ ही प्रत्येक–point की दिव्य–दशा की अपनी research के फलस्वरूप एक सीधा एवं सहज–द्वार साधना के आदि से लेकर अनन्त (Ultimate) तक की प्राप्ति के हेतु अब समस्त के हेतु उन्मुक्त हो गया है। इस आध्यात्मिक–ईश्वरीय–क्षेत्र में प्रवेश पाते ही आदि से लेकर अनन्त–यात्रा तक का मार्ग समस्त के लिये सरल, सुलभ एवं सहज कर दिया है क्योंकि इस क्षेत्र में प्रवेश पाते ही भक्ति के आकर्षण की दशा उलट जाती है। क्योंकि मैंने पाया कि अब भगवान का (Divine) आकर्षण भक्त या अभ्यासी को अपनी ओर खींचने लगता है। वास्तविक–बात तो यह है कि भक्त और भगवान का रिश्ता है। जब भक्त ने अपने ध्यान का बाँध–तोड़कर भगवान के क्षेत्र में प्रवेश पा लिया तो अब हद रही ही कहाँ जबकि वह 'बेहद' के दिव्य–क्षेत्र में खड़ा हो गया है। यद्यपि यह ज़रूर है कि रिश्ता तो हमारा आदि से ही चला आ रहा है लेकिन आज उसकी याद ने हमें 'उसकी' सामीप्यता प्रदान कर दी है और अब इस रिश्ते की सीमा ही टूट चुकी है–याद के रस में डूबे हृदय की कशिश ने जब अपने हद की सीमा को छू लिया तो फिर समझना चाहिये कि बन्दे की याद का संदेश वहाँ पहुंच गया है, बस तभी 'उसका' एक–एक ईश्वरीय–द्वार हमारे समक्ष खुल जाता है और 'उसकी' सामीप्यता का सेंक पाकर हमारा कुल पसीज उठता है। जानते हैं क्यों? क्योंकि हमारे प्रेम की कशिश का सेंक 'उसके' प्रवेश–द्वार की

सीमा को ढहा देता है और अब? एक यह भी आश्चर्य मैं देख रही हूँ कि हमारे कुल की पसीजन के पसीने की बूँद–बूँद श्रीबाबूजी, बाबूजी को ही पुकार उठती है–मानो कभी का खोया बालक माँ के दर्शन के लिये विह्वल हो उठा है और उसका हर आँसू मानो उनमें ही समाया हुआ होता है। मुझे याद आ रहा है कि मैंने जो अपने पत्र में 'श्रीबाबूजी' को अपनी यह हालत लिखी थी कि "मेरा ज़र्रा–ज़र्रा मानो समक्ष में बिखरा पड़ा है और बाबूजी, बाबूजी पुकार रहा है।" आज पचास वर्षों बाद मैं यह पुस्तक लिखते समय इस दशा के क्षेत्र और इस दशा की वास्तविकता को समझ पाई हूँ कि यह दशा अंतर में ईश्वरीय–द्वार खुल जाने पर, ईश्वरीय–क्षेत्र में प्रवेश पाने का मानो शुभ–संदेश होता है।

अब श्रीबाबूजी महाराज का यह दैविक–कथन हमारे समक्ष इस दैविक–दशा को स्पष्ट कर देता है कि "हमारे यहाँ हृदय खोला नहीं जाता है खुल जाता है। एक और तथ्य मेरे समक्ष में व्याप्त हो उठा है कि हमारे मिशन का दूसरा नियम मानो हमारे मिशन की प्रार्थना से सम्बन्धित हुआ रहता है। हमारे मिशन की प्रार्थना सर्वप्रथम हमारा परिचय हृदय में, मन के मंदिर में बिराजे ईश्वर से कराती है कि "हे नाथ तू ही मनुष्य–जीवन का ध्येय है।" क्रमशः यह दैविक–चेतना हमारे सम्पूर्ण हृदय के समक्ष यह सत्य–प्रकाशित कर देती है कि वह प्रियतम तेरे में ही विराजमान है। तभी से अंतर–मन उसे ही अपने मिलन का ध्येय बना लेता है। इसका पता हमें तब चलता है जबकि उसके दर्शन की व्यग्रता स्वतः ही हमारी प्रार्थना की दूसरी पंक्ति को पुकार उठती है कि "हे मालिक! हमारी इच्छायें ही आपसे मिलन के मार्ग में बाधक हो रही हैं।" तो मानो उसी समय से व्यग्रता की इस मूक–बाणी की तपिश इच्छाओं के बंधन को क्रमशः पिघलाने लगती है। परिणामस्वरूप तबसे इच्छाओं का ज़ोर कम हो जाता है और

साक्षात्कार पाने का ध्यान कुछ इस तरह से अंतर में प्रवेश पा जाता है कि मानो अब हमारी इच्छाओं का आधार ईश्वर का ध्यान ही बन गया है। आधार बदलते ही मानो ध्यान की दृढ़ता, लक्ष्य की दृढ़ता में इस सत्य को पूर्णातयः भर देती है कि हमारे मिशन की प्रार्थना की तीसरी पंक्ति ईश्वरीय–द्वार पर क्रमशः दस्तक देती हुई, अंतर–वेदना की कशिश (craving) उन तक यह संदेशा पहुँचा देती है कि ''तू ही हमारा एक–मात्र स्वामी और इष्ट (प्यारा) है''। लगता है तभी से मानों मन में बिराजे ईश्वर के द्वार का दरवाज़ा इतना झीना हो जाता है कि हमारे कुल में वहाँ से आता Divine नूर कुछ ऐसे समाने लगता है मानो न तो 'हम' रह जाते हैं और न द्वार का ही पता रहता है। अपना होश Divine alertness में इस तरह से समा जाता है कि भक्ति भरी यह दशा हमारी जगह स्वयं ही पुकार उठती है कि 'बिना भक्ति तारो तब तारिबो तुम्हारो है– अर्थात् अब हमारे मिशन की प्रार्थना की चौथी एवं अंतिम पंक्ति आत्म–निवेदन की इस व्यथा सहित उसके समर्पित हो जाती है कि ''बिना तेरी सहायता तेरी प्राप्ति असंभव है''। और तभी मानो मेरे गीत की यह पंक्ति इस दशा के साथ ही गुनगुना उठी होगी कि ''नूर की रंगत जभी पहिचान मेरी बन गई, दर्द की मासूम आँखें दर्श तेरा पा गईं''। अर्थात् craving में डूबे ध्यान की आँखों ने तुम्हें पहिचान लिया है और मेरे परिचय की पर्ची (अहं भाव) को अपने प्यार के सागर में डुबो 'उसने' (Divine ने) गला दिया और उसके स्थान पर अपना ही Divine रंग यानी Divinity को बिखेर दिया। कदाचित् यह कारण अब मैं समझ पाई हूँ कि तभी से सामीप्यता की दशा उनमें लय होकर हमें (Divine) सारूप्यता की दैविक दशा से सजा देती है। अब दूसरे नियम की अंतिम–दशा दैविक–सामीप्यता को आत्म–सात् करके मिशन के तीसरे नियम की देहलीज़ पर खड़ा कर देती है– यह कहकर कि ''प्रार्थना इस तरह से हो कि हृदय प्रेम से भर आवे। अब हृदय, हृदय न रहकर दैविक–सारूप्यता को सँवारे

दैविक–प्रेम का प्रतीक ही बन जाता है। अब भला बतायें कि जब दैविक–सारूप्यता का अनुपम श्रृंगार ही मेरे बाबूजी ने मुझे प्रदान कर दिया, प्रार्थना होश खोये प्रार्थी (अभ्यासी) में ही समा गई और प्रार्थी दैविक–सारूप्यता में विलीन हो गया तो फिर प्रार्थना हमें छोड़कर मानो और सबको लाने के हेतु बाट–जोहती सी खड़ी रह जाती है। मैं तो यह पा रही हूँ कि श्रीबाबूजी की दैविक इच्छा किसी भी दैविक–रहस्य को रहस्य के आवरण में नहीं रहने देगी।

■■■

➲ एकाग्रता के अभ्यास द्वारा ईश्वर को नहीं पाया जा सकता है, क्योंकि एकाग्रता में हम एक–धुरी हो जाते हैं और किसी वस्तु की प्रतीक्षा नहीं करते हैं। लेकिन ध्यान में हम किसी वस्तु की प्रतीक्षा करते हैं, और वह है–ईश्वर।

– श्री बाबूजी

तीसरा नियम

हर भाई को चाहिये कि अपना मक़सद क़ायम कर ले और वह यह कि ईश्वर तक पहुँचकर उसमें लय–अवस्था हासिल कर ले। मुस्तक़िल कयाम कर ले– और जब तक यह बात हासिल न हो जाये चैन न आये।

श्रीरामचन्द्र मिशन में सहज–मार्ग–साधना में मानव–मात्र को 'ईश्वर–प्राप्ति' का परम–लक्ष्य दिया गया है। साथ ही साधना को तीन विशेष अंग प्रदान किये गये हैं। प्रथम ध्यान, दूसरा सफ़ाई और तीसरा सोते समय प्रार्थना। ध्यान के लिये उन्होंने अभ्यासी के लिये बताया है कि ईश्वर मन के मंदिर में विद्यमान है और हृदय उसके प्रकाश से प्रकाशित है। आँख बंद करके हृदय में ध्यान को ईश्वर की मौजूदगी के भाव में स्थित रखते हुये विचार से ईश्वरीय–प्रकाश में डूबे रहने का भाव दिया है। ईश्वरीय–धारा का अभ्यासी–हृदय में प्रवाह देकर अंतर में ईश्वरीय–प्रकाश की उज्ज्वलता को भी उज्ज्वल किया है। यही कारण है कि दिव्य–सामीप्यता का अनुभव शीघ्र ही हमें प्रतीत होने लगता है। और क्यों न हो जबकि 'वह' हमारे हृदय में विद्यमान है। सहज–मार्ग–साधना में ईश्वर की याद में डूबा ध्यान हम साधकों के लिये साध्य से प्रेम के दृढ़ रिश्ते की तरह से अडिग हो जाता है। प्रेम का धागा हमें ईश्वर से योग देकर निरंतर उसके निकट लाता जाता है। जहाँ ध्यान ने ईश्वरीय–देश की चौखट का स्पर्श देकर, ईश्वरीय–सौंदर्य के चुम्बन से सजाकर प्रियतम–ईश्वर–प्राप्ति के लक्ष्य की विभोरावस्था में साधक को डुबोया तभी मैंने पाया कि बाबूजी महाराज ने साधक से उसके होने के भाव को अलग करके उसे मात्र identity बख़्श दी। वास्तव में तब मैंने पाया कि ''हमारे

मिशन की प्रार्थना वास्तव में समर्पण है''। हमारे होने के भाव अर्थात् अहं और मिलन की तड़प श्रीबाबूजी के Divine रंग में रंगकर स्वयं के अस्तित्व को भी खो बैठती है। हृदय प्रेम से पुलकित होता रहता है।

सच तो यह है कि इस तीसरे नियम में ध्येय–प्राप्ति अर्थात् ईश्वर–प्राप्ति की दृढ़ता ही मानो direct appeal है ईश्वर से 'उसे' पाने की और याद में डूबी तड़प ही वास्तविकता है हमारे अहं को गला देने की। दूसरे नियम में हमारा सीधा सम्बन्ध Divine से जोड़ने का प्रमुख धागा 'प्रार्थना' है। जब मैंने श्रीबाबूजी को लिखा कि ''मुझे ऐसा लगता है कि मेरा कण–कण, ज़र्रा–ज़र्रा मानो Divine के समर्पित हो गया है। इतना ही नहीं मेरा रोम–रोम याद ही बन गया है और याद मुझे हमेशा के लिये मानो छोड़ गई है।'' तो उन्होंने मुझे लिखा था कि ''यह जान कर खुशी हुई कि तुम पूर्णतयः मिट गई हो''। ऐसी हालत को सरापा यानी सिर से पैर तक प्रार्थनामय होकर 'लक्ष्य' में लय–अवस्था प्राप्त कर लेना ही कहते हैं।

जब हमारा अंतर प्रार्थना में डूब जाता है तबसे हमारी अंतर–दृष्टि मानो अपने प्रिय को पहिचान कर अपलक हुई हमें यह बता देती है कि दैविक–लक्ष्य ईश्वर–प्राप्ति अब मेरे समक्ष में व्याप्त हो गया है। परम–लक्ष्य मिलन की दृढ़ता एवं चाह अपना चैन खोकर तड़प का स्वरूप बन जाती है– श्रीबाबूजी का कथन कि ''तड़प अपना रास्ता खुद टटोल लेती है'' अब सत्य होकर इस दशा के रूप में हमारे में मानो सजीव हो उठता है। Divine attraction हमें अपने में लय–अवस्था प्रदान करता है। श्रीबाबूजी महाराज के कथनानुसार जब लय–अवस्था प्रारम्भ हो गई तो समझ लेना चाहिये कि मिलन भी होगा ही– और सच मानो तो अभ्यासी के लय–अवस्था प्राप्त करने के बाद ही मेरा कार्य शुरू होता है।'' उनका यह Divine कथन मैंने इस तरह से

सिद्ध हुआ पाया है कि आध्यात्मिक क्षेत्र में साधना की तीन दशाओं का सौंदर्य प्राप्त होता है अर्थात् प्रथम दर्शन, फिर ईश्वरीय–देश में प्रवेश पाना पश्चात् लय–हो जाना। जैसे नदी सागर में विलीन होकर अपना अस्तित्व खो बैठती है– इसी प्रकार ईश्वरीय–केन्द्र में ईश्वर में लय होकर कोई वापस नहीं लौटता है उसमें ही विलीन हो जाता है। जानते हैं क्यों? क्योंकि सृष्टि के हेतु क्रियान्वित–दिव्य–शक्ति का मुख्य–केन्द्र यही है तो फिर भला 'वतन' में पहुँचकर कोई वापस आ भी कैसे सकता है। इसी लिये इसे मेरे जीवन–सर्वस्व श्रीबाबूजी ने अपने ही हाथ में रक्खा है– इसका एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि उन्होंने प्राणीमात्र को सहज–मार्ग–साधना में ईश्वर–प्राप्ति के लक्ष्य के बाद Ultimate यानी भूमा में ले जाने का अन्तिम लक्ष्य दिया है। अब ज़रा उनके दैविक–कार्य–कुशलता के साथ उनके Divine प्रेम की झलक का किंचित अवलोकन भी करें कि कैसे ईश्वरीय–केन्द्र के मुख्य–बिन्दु (ईश्वर) में पैराव देकर हमें आगे ले चलते हैं। यह ध्रुव–सत्य भी समस्त के हेतु आज प्रत्यक्ष हो रहा है कि अवतार तो ईश्वरीय–क्षेत्र से प्रकृति के कार्यानुसार ही धरा पर प्रकट हुये इसलिये कोई बारह–कला और कोई सोलह–कला की शक्ति के स्वामित्व का स्वरूप थे। आज श्री लालाजी महाराज के द्वारा धरा पर प्रगट दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी के रूप में अनन्त–शक्ति यानी आदि– source की शक्ति का प्रतीक बनकर आई है जो दैविक–कार्य–कुशलता एवं क्षमता का सजीव–प्रतीक है। साधना में मैंने पाया कि साक्षात्कार से आगे कोई जा ही नहीं सकता है बिना ईश्वर–प्राप्ति की दिव्य–दशा को पाये। कबीर की वाणी इस व्यथा में आख़िर बोल ही उठी थी कि "हद–अनहद के बीच में रहा कबीरा सोय" क्योंकि साक्षात्कार तो भक्ति की चरम–सीमा थी उसे उनकी अविरल एवं अविचल–भक्ति ने पा लिया किन्तु जो, दिव्य साक्षात्कार के आगे उन्हें अंदाज़ में, आ रहा था उस स्वतः दर्शन की सीमा से पार जाना असंभव था। यह

ध्रुव–सत्य भी मैंने स्पष्ट अनुभूति में श्रीबाबूजी की मुझ पर पूर्ण research के फलस्वरूप पाया है कि यह केवल श्रीबाबूजी महाराज की दैविक कार्य–निपुणता के साथ दिव्य–अनन्त क्षमता थी कि मैं तो अवाक् विस्मृत–अवस्था को भी, भूली खड़ी हो गई जब अचानक उन्होंने ईश्वरीय–मुख्य–केन्द्र–बिन्दु में भी डुबकी देकर मुझे निकाल लिया। मानो ईश्वरीय पूर्ण–शक्ति के केन्द्र में नहला कर उस शक्ति से सज्जित करके दैविक–सत्य–पद पर मुझे प्रतिष्ठित कर देने का दिव्य–नज़ारा यह पुस्तक लिखते समय जो समक्ष में मुझे दे रहे हैं– मेरी लेखिनी अभिभूत है, अविचल है कि आगे क्या लिखें और कैसे लिखें? और मैंने ईश्वरीय–शक्ति की मानो सजीव प्रतिमा के सदृश, अहं के सोलह–circles से परे समक्ष में वह दैविक–नज़ारा जो अब अंतर्दृष्टि से नहीं बल्कि दिव्य–दृष्टि द्वारा ही अनुभूतिमय हो सकता था अनुभव किया तब मैंने पाया कि ईश्वरीय–मुख्य–केन्द्र–बिन्दु में नहला कर मुझे लाने वाली उन दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी का समक्ष साक्षात्कार पाकर मानो स्वयं ईश्वर का पसारा भी ममत्व से भीग उठा था। दिव्य–दशा के साथ ही इस दिव्य–दृश्य को मैंने गीत के सहारे समस्त के हेतु सुलभ कर पाने का प्रयास अपने बाबूजी की दैविक–गरिमा में डूबकर ही शब्दों में लिख पाया है–

गीत है– ''भूल गई मैं तो घर अपना रे।
याद आये उनका (बाबूजी) था पीछे मुड़ के देखना,
विदा देते ईश के पसारे का पिघलना,
ममता का सागर मानो उनमें ही समाया रे।।''

बस मैंने पाया कि मानो ईश्वरीय–शक्ति का स्वरूप देकर उन्होंने सत्य–पद पर मुझे प्रतिष्ठित कर दिया जो कि मानव के बैठने का वास्तविक–स्थान है। यों कह लें कि हम जैसे आये थे वैसे ही हो गये और ऐसा हो जाने के बाद ही तो Centre Region, जो

Ultimate का वैभव–Region है उसमें प्रवेश पाया जा सकता है। यही कारण है कि सहज–मार्ग में प्रत्येक नियम हमें रहनी में ऐसी ही श्रेष्ठ–दशा के सौंदर्य से सजने का संकेत देता है। कदाचित् इसी लिये हमारे श्रीबाबूजी ने सहज–मार्ग System को way of living बताया है, जिसकी साधना हमें दस नियमों के सौंदर्य से सजाकर अन्तिम–सत्य की सत्यता में ले जाने के लिये अपने सर्वस्व श्रीबाबूजी को सौंप देती है और हमें साधना से भी मुक्त कर देती है। इस तीसरे नियम की दशा की पूर्णता को भी हमारे में भर देने की उनकी खूबी को देखिये कि "Complete Oneness with God की दशा में स्थित करके, ईश्वरीय–गति में लय करके फिर Divine तेज के अंश रूप में Central Region के द्वारा सत्य, पद पर प्रतिष्ठित कर देते हैं। इतना ही नहीं अब बारी आ जाती है उनके चैन हरने की क्योंकि अब सत्य–पद से उठाकर जब उन्होंने मुझे पार्षद की भौंचक–स्थिति में प्रवेश दिया तो मैंने पाया कि मानो मेरी ख़बर 'वे स्वयं भीतर लेकर गये हैं कि कोई बन्दा द्वार पर इन्तज़ार में बैठा है'। बस यह नज़ारा पल, दो पल का ही होता है कि मानो समक्ष में उनकी मुस्कराहट हमारे प्रवेश की आज्ञा बनकर बिखर जाती है। भला बतायें क्या कहेंगे आप? मिशन के दस नियम? जो पालनार्थ से बढ़कर, आज हमें अपना परिचय, प्राप्ति–अर्थ बनकर दे रहे हैं।

अपने श्रीबाबूजी के लिये मैं क्या लिखूँ जब मेरी समझ में कुछ न आया तो लगा कि मानो किसी ने मेरी लेखिनी द्वारा स्वतः ही मेरे लेखन में यह प्रकट कर दिया कि वह दिव्य–विभूति जिन्हें समर्थ सद्गुरू श्रीलालाजी ने सात महीने की अथक–साधना के द्वारा भूमा के अंशरूप में उतारा है वे श्री बाबूजी ही हमारे समक्ष में और समस्त में व्याप्त है। सहज–मार्ग साधना को अपना कर ईश्वरीय–दशा में एकत्व प्राप्त करके मानो मैं ईश्वरीय–साक्षात्कार की महत्–दशा को प्राप्त कर 'उनकी' दिव्य–एवं अनन्त–गरिमा की साक्षी–स्वरूप समस्त

के प्रति निवेदित हो गई हूँ। आत्म–विभोरावस्था में सत्य–पद की प्रतिष्ठ को भी 'उनके' चरण–तले पाकर आज मैं बेखुदी के होश से भी बेसुध होकर समर्पण अथवा surrender की दशा की प्रत्यक्षता में यह पा रही हूँ कि प्रथम तो अभ्यासी को अहं के सोलह circles के बंधन से मुक्त करके वे ईश्वरीय–देश में प्रवेश देते हैं। फिर पलक मारते ही दिव्य–शक्ति के मुख्य ईश्वरीय केन्द्र में गोता देकर अभ्यासी को उसके मूल–पद यानी सत्य–पद पर प्रतिष्ठित करके हमारे समक्ष में स्वयं को मानो अन्तिम–सत्य के वैभव–देश (Central Region) के प्रहरी के सदृश ही दिखलाई देते हैं। और सच ही जब उनका मुस्कान भरा मुख Central Region से झाँकता है बस तभी मानो हमें उस महत्–Region में प्रवेश पाने का सिगनल मिल जाता है।

वास्तव में हमारे मिशन का तीसरा नियम मानो सोपान है अभ्यासी के ईश्वर तक पहुँचने का। दूसरे नियम की अंतर्दशा जब हमारे अंतर में मालिक से प्रार्थना में डूब जाने की स्थिति प्रदान कर देती है तो मानो आंतरिक–दृष्टि अंतर में बिराजे ईश्वर को पहिचान कर अभ्यासी को दिये ईश्वर–प्राप्ति के लक्ष्य में स्थिर हो जाती है। लक्ष्य की दृढ़ता की लगन की इस डोरी द्वारा ही मानो Divine wave अथवा ईश्वरीय–धारा का प्रवाह हमारे अंतर में निरंतर प्रवाहित रहने लगता है तभी कबीर की वाणी कदाचित् इस आध्यात्मिक–दशा में डूबकर मुखरित होकर बोल उठी होगी कि ''सुरत सुहागिन है पनिहारिन, ठाढ़ि भरें बिन डोर रे''। तभी से सिलसिला शुरु हो जाता है कि जिस प्रकार से श्रीबाबूजी महाराज में अभ्यासी को लक्ष्य तक शीघ्र ले जाने की इच्छा उनके चैन को हर लेती है–बस उसी प्रकार अभ्यासी के अंतर में शीघ्र उन्नति की चाह अब तड़प बन जाती है। तभी श्रीबाबूजी का कथन practical दशा के रूप में समक्ष उतर आता है कि 'तड़प अपना रास्ता खुद टटोल लेती है। ''अब तीसरे नियम की दशा हमें यह दिलासा देकर

हममें प्रवेश पा जाती है कि "जब तक लक्ष्य–प्राप्त न हो जावे, चैन न आवे"। यहाँ आदि–शक्ति का रूख जो प्रथम रचना को लाने में अपना रास्ता बनाने के लिये बेचैन था, उसकी इसी बेकरारी ने प्राणी–मात्र के हित मानो अंतिम–सत्य पर पहुँच पाने का भी रास्ता बनाया जिसे हमारे सहज–मार्ग के दाता श्रीबाबूजी महाराज ने खोज कर हम अभ्यासियों के सन्मुख उन्मुक्त कर दिया है। और इस निमंत्रण के साथ कि उसे पार करने की जीवन रहनी भी वैसी ही बना लें – और तभी मानो चौथे नियम का द्वार खुलकर मानो हमें अपने में प्रवेश दे देता है। अब लेखिनी मानो इसमें प्रवेश पाकर यहाँ की वास्तविकता को खोल पाने का मन बना चुकी है।

■■■

➲ कीर्तन–भजन में तन्मयता होती है, एकाग्रता नहीं। एकाग्रता तो ध्यान में ही पाई जा सकती है।

– श्री बाबूजी

चौथा नियम

"अपना जीवन साधारण बना ले और वह ऐसा हो कि नेचर से मिल-जुल जावे।"

लिखना तो अब यही पड़ता है कि यूँ तो नियम, नियम होता है किन्तु ईश्वर से जुड़ी हुई सहज–मार्ग साधना मानो हम अभ्यासियों के लिये दैविक–वरदान है कदाचित् तभी मैंने पाया है कि हमारे मिशन का हर नियम हमें अपने से बाँधता नहीं है बल्कि हमें हमारी क़ैद (अहं की) से क्रमशः छुटकारा देता हुआ सहज–मार्ग–साधना में श्रीबाबूजी महाराज द्वारा दिये गये, ईश्वर प्राप्ति के परम–लक्ष्य की ओर अग्रसर करता जाता है और दूसरी ओर श्रीबाबूजी द्वारा पाया हुआ Divine transmission हमें शक्ति द्वारा उस योग्य बनाता जाता है। तभी तो हम अभ्यासियों के लिये उनकी यह दैविक–बाणी सत्य होती जाती है कि 'एक जीवन में ही नहीं बल्कि इससे भी अल्प–काल में अभ्यासी अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है'। उन्होंने सहज–मार्ग साधना में ईश्वर–प्राप्ति का लक्ष्य प्रदान करके मानो सबको एक ही कड़ी से जोड़ दिया है तभी तो उनका यह कथन स्वतः सिद्ध हो जाता है, कि हमारे जीवन में brother-hood (भाईचारा) स्वतः ही साकार हो उठता है। उनका यह कथन भी हमारी जीवन–रहनी में यह रंग लाता ही है कि "मैंने सहज–मार्ग–साधना में brother-hood की जान फूँकी है।" अभ्यासी-जीवन प्यार एवं सत्यता से भर उठता है क्योंकि इस साधना में लक्ष्य ईश्वर–प्राप्ति का होने से इसकी नींव प्रेम एवं भक्ति पर ही आधारित है। भक्ति तो संयम और नियम के बंधन से परे मानो दीवानगी का ही प्रतीक होती है।

मिशन का तीसरा नियम "ईश्वर में लय–अवस्था की प्राप्ति" के लक्ष्य–स्वरूप मानो दैविक–समीप्यता का प्रतीक हो जाता है। तभी तो चौथे नियम में प्रवेश पाते ही हमें लगने लगता है कि मानो हमारा जीवन अब किसी दूसरे के संचालन से संचालित होता जा रहा है। इस स्थिति में पहुँच कर ही मैंने पाया कि मानो मेरी अपनी कुछ प्रकृति ही नहीं रह गई है अर्थात् आदत शब्द की दासता से मैं मुक्त हो चुकी हूँ। ऐसा लगता है कि मानो दैविक–जीवन–रहनी हमारे में स्वतः ही अपने प्रवेश का संदेश देती है, क्योंकि भौतिकता से परे Divine का सतत्–स्पर्श पाने वाली जीवन–धारा को अब उनकी ही प्रकृति संचालित कर सकती है। जानते हैं क्यों? क्योंकि उस देश की प्रकृति वहाँ के दैविक–वातावरण में पगी होने के कारण हमारा उससे परिचय कराती हुई हमारी रहनी को वैसा ही ढाल सकने में समर्थ होती है। समक्ष में मैं यही पा रही हूँ कि वास्तव में दैविक–सादगी ही प्रकृति की ज़िंदगी है। सादगी का अपना कोई साया नहीं होता है इसलिये यह अपने में अनोखी एवं दिव्य है। कदाचित् इसी लिये मिशन के इस नियम में पा रही हूँ कि मानो अब तक तो दशा में एवं रहनी में माया का पुट शामिल था क्योंकि किसी न किसी रूप में मानो मैं अथवा अहं का साया दशा पर पड़ता रहा था किन्तु अब लगता है कि जीवन–रहनी में स्वचालित–गति ही प्रवेश कर गई है– मानो प्रकृति (Nature) ने अभ्यासी की उन्नति के प्रति अब हर कार्य में सहायक रूप में क़दम–ब–क़दम चलना शुरू कर दिया है। यहाँ पर मेरे समक्ष यह नितान्त रूप से स्पष्ट हो गया है कि नियम के रूप में भी हमारे श्रीबाबूजी ने मिशन की प्रार्थना को जिस तरह से उस भाव में पूर्णता लाने की भक्ति और शक्ति दोनों से चार्ज कर दिया है, उसी प्रकार से मिशन के दसों नियमों को हर आवश्यक–दशा की वास्तविकता एवं शक्ति से ऐसी सम्पन्नता प्रदान की है कि जब और जैसे ही हम अभ्यासी में इन दसों नियमों के सौंदर्य का समावेश होता है तो एकदम से समक्ष में लगता है कि अब साक्षात्कार की पावन बेला आ

गई है। मानो दसों नियमों की दशा के पावन–सौंदर्य का प्रादुर्भाव स्वतः ही हमारी रहनी में उतर आता है। कबीर का कथन कि "एकै साधे, सब सधे" की स्पष्टता को सहज–मार्ग साधना द्वारा मैंने अपने श्रीबाबूजी महाराज में लय–अवस्था प्राप्त करने पर स्वयं में सहज ही उतरा हुआ पाया है। सहज–मार्ग में दस नियम के रूप में समस्त के लिये मानो उनका दैविक, सशक्त संकेत है कि अभ्यासी जीवन को सजाने के लिये यह सौंदर्य आध्यात्मिक–उन्नति के रूप में जीवन के हर पहलू में स्वतः ही उतरता चला आता है। यही चौथे नियम की दशा की प्रत्यक्षता का मधुर साक्षी है। क्योंकि ईश्वर से सीधा योग पाये हुये 'उसे' प्राप्त करने के हेतु यह नितान्त स्वाभाविक–साधना है। उनके इस कथन की प्रत्यक्षता भी समस्त के समक्ष में उजागर हो गई है कि "सहज–मार्ग ऊपर से उतरा हुआ ईश्वरीय–मार्ग है। समर्थ सद्गुरू श्रीलालाजी सा. का यह कथन समस्त के लिये प्रत्यक्ष हो गया है कि 'आदि–प्रकृति के सौंपे हुये दैविक–कार्य को' कि "मानव–मात्र में ईश्वर–प्राप्ति की चाह उत्पन्न हो" पूर्ण करने हेतु रचना की शक्ति के प्रतीक आदि Source की परम–शक्ति पर स्वामित्व पाये हुये हमारे श्रीबाबूजी दिव्य–विभूति के रूप में धरा पर अवतरित हुये, कार्य रत हैं। उनका यह दैविक–आगमन युग को सत् (ईश्वरीय) युग में बदलने के बाद युग प्रवर्तक के रूप में सदैव उनका दर्शन पाता रहेगा– उनकी प्रत्यक्षता पाना ही मानव का लक्ष्य होगा"।

एक दैविक–रहस्य मेरे समक्ष में यह भी स्पष्ट हो गया है कि श्रीबाबूजी के सारे उसूल मानो अपने सौंदर्य के आवरण में कुछ इस तरह से छुपे हुये हैं कि अंतर में ईश्वर–प्राप्ति का लक्ष्य दृढ़ होते ही जैसे जैसे अहं का आवरण झीना पड़ता जाता है वैसे ही वैसे दसों नियमों के स्वाभाविक सौंदर्य से ढके आवरण स्वतः ही झीने पड़ते–पड़ते अपने सौंदर्य से मानो हमारी प्रकृति (Nature) को सँवारने लग जाते हैं। तभी एक दिन ऐसा अवश्य आता है कि गीता की इस दैविक–दशा

के मानो हम जीते–जागते प्रतीक बन जाते हैं कि "गुण, गुण में ही बर्तते हैं"। और हो भी क्यों न क्योंकि "ईश्वर गुणों से परे है"। इस तरह मैंने पाया कि सहज–मार्ग–साधना का हर पहलू चाहे "ध्यान हो, सफाई हो" या प्रार्थना हो' पूर्णतयः natural है– तभी तो आत्मिक उन्नति–पथ पर अग्रसर होते हुये यह एक दिन हमारे लिये 'श्रीबाबूजी महाराज की कृपा एवं शक्ति का ऐसा वरदान भी देता है कि प्रकृति से भी परे हमारा जीवन आदि–प्रकृति से मिला–जुला रहने लगता है'। जानते हैं क्यों? क्योंकि तब 'हम' नहीं रहते हैं। अर्थात् हमारे 'मैं' का भाव उनके प्यार में विलीन होकर हमें सर्वव्यापी बना देता है। अब देखें कि अहं से भ्रमित रहते हुये हम, अब तक जो माया के दायरे में, भौतिक चमक–दमक एवं वाह्य तड़क–भड़क के दायरे में भटक रहे थे वही 'मैं' का भाव जब जीवन–सर्वस्व श्रीबाबूजी महाराज के प्यार में विलीन हो जाता है तब हम सर्वव्यापी रूप में व्यापक हो जाते हैं। अब एक बात यह भी प्रकट हो गई है कि जो शक्ति ईश्वरीय–केन्द्र से अवतरित होती है उसकी भक्ति में विभोर होकर हम अहं की सीमा से परे हो जाते हैं। और तभी हमारी रहनी मानो nature से संचालित हुई हमसे अछूती रहती है। और आज? आदि–Source से अवतरित दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी के प्यार में विलीन हुआ हमारा 'मैं' सर्वव्यापी बन कर ईश्वरीय–केन्द्र की सीमा को लाँघकर, अपने सत्य–पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है। इससे भी श्रेष्ठ एवं दिव्य–संकल्प का सहारा पाकर Ultimate (आदि–शक्ति) के अनन्त वैभव–केन्द्र (Central Region) में पैराव पाता है।

सच तो यह है कि आँखें खोलकर देखें तो माया का पसारा है और आंख बन्द कर देखें तो अंतर में आध्यात्मिकता का पसारा है। बाहर रचना का पसारा है और अंदर हमारे मन के मंदिर में रचयिता (ईश्वर) विराजमान है। वाह्य में भ्रमण करते रहने से माया का वातावरण

हमें ठग लेता है और हम यह कहने लगते हैं कि "माया महा–ठगिनि हम जानी" किन्तु वास्तव में तो फल हमारे सम्बन्ध का होता है अर्थात् यदि सम्बन्ध वाह्य से है तो माया हमें ठग लेती है परन्तु दूसरी ओर जब हमारी रहनी आंतरिक हो जाती है तभी मायापति (ईश्वर) हमें इससे उबार कर अपने Divine वातावरण में पालने लगते हैं। यद्यपि दोनों रहनी के मध्य का अंतर बहुत बड़ा है। एक ओर वाह्य रहनी में सिमटाव, संकुचितपन एवं दिमागी ताने–बाने में उलझी अशान्त, अस्थिर जीवन–रहनी है और दूसरी ओर आंतरिक–जीवन–रहनी जो श्रीबाबूजी के दिये लक्ष्य में समर्पित माया–पति (ईश्वर) से योग पाये हुये, निरन्तर शान्त, एवं दैविक–आनन्द में पगी, फैलाव से सँवरी स्थिति–प्रज्ञ–दशा में विलीन हो जाती है। कहना पड़ता है कि सच तो यही है कि यहाँ तो दो विरोधी nature हैं जिनका खेल बिल्कुल फर्क है। वाह्य में हमारा nature हमसे (अहं) ही संचालित होते रहने से क्रमशः ताने–बाने में उलझा, सादगी के बिल्कुल विपरीत दिखावे में सिमट कर रह जाता है क्योंकि माया की सीमा में बंद रहता है। श्रीबाबूजी की कृपा से जब हमें अंतर में ईश्वर–प्राप्ति का दैविक–लक्ष्य मिल जाता है तो मानो विचार में से विकार एवं सोच में से सिमटाव और nature में से ठहराव की सीमा ईश्वरीय–धारा का प्रवाह पाते हुये मानो अपनी उकताहट से मुक्ति पाती हुई अंतर में फैलाव इसलिये अनुभव करती है कि फिर अहं का बंधन गलते जाने से ईश्वरीय–सीमा की nature का शान्त, आनन्दमय अनुभव हमें सतत्–साम्य–गति के वातावरण से मानो नहलाता रहता है। मज़े की बात यह है कि इस नहाने में मैल नहीं बल्कि 'मैं' का भाव ही साफ़ होने लगता है। फिर एक दिन अवश्य आता है कि Ultimate की ज़ात की सादगी का वातावरण ही मानो दैविक–पोशाक की तरह से हमें लपेटे रहता है। मैं अब यह पा रही हूँ कि अन्तिम सत्य का अपना वातावरण मानो सादगी की जान है और यह पोशाक की तरह

से मानो जाल से लिपटा हुआ है। मैं यह भी देख रही हूँ कि सब कुछ मानो एक दूसरे से इस प्रकार से जुड़ा हुआ है कि हर योग का दाना ही मानो श्रीबाबूजी महाराज द्वारा लिखित ग्रन्थियाँ हैं। आज यह पुस्तक लिखते समय ही मानो मेरे बाबूजी ने इस दैविक–रहस्य को भी समस्त के लिये उजागर कर दिया है। इतना ही नहीं यहाँ के हर जर्रे–ज़र्रे में कुल अनन्त–शक्ति निहित है। ऐसा लग रहा है कि एक–एक ज़र्रा ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने की शक्ति से पूर्ण है। अब बतायें अपने 'बाबूजी' की दिव्य–research के फल–स्वरूप ही आज उनकी चाह से उठाई गई यह लेखनी इन दिव्य–रहस्यों को प्रकट कर पाने का साहस कर सकी है। सच तो यह है कि स्याही की जगह लेखिनी में 'वे' दैविक–रहस्य को भर देते हैं और लेखिनी उन्हें काग़ज पर छाप देती है। यह नज़ारा ही समस्त के हित भेद के विच्छेदन का साक्षी है। मेरे पास तो कुछ भी कहने को नहीं है। यह सत्य भी आज स्पष्ट हो गया है कि कदाचित् श्रीबाबूजी महाराज द्वारा उतारी गई सहज–मार्ग–साधना के अतिरिक्त कोई भी साधना अपने साधक में आदि से लेकर अंत तक की दशा की प्रत्यक्षता नहीं दे सकी है। श्रीबाबूजी से योग पाये हुये आदि–Source तक की अनन्त–यात्रा का वर्णन श्रीबाबूजी में पूर्ण–लय–अवस्था को पाये बिना, न कभी रोशन हो सका है और न कभी आगे होगा। सहज–मार्ग–साधना द्वारा अभ्यासी–हृदय जब ईश्वरीय–प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है, तो फिर क्रमशः यह ईश्वरीय–प्रकाश हमारे कुल system को ही प्रकाशित कर देता है कैसा सजीव–Divine system है हमारा सहज–मार्ग कि ईश्वरीय होने के कारण इसमें ईश्वरीय–सामीप्यता द्वारा दिव्य–विभूति की दैविक–छवि का आभास हमें मिलने लगता है– मानो कुल system ईश्वर–मय हो रहता है। तभी से हृदय एवं mind त्रिगुणातीत–अवस्था में विलीन होने लगते हैं। तभी से हमारे मिशन के चौथे नियम की रहनी के अनुसार हमारी रहनी दैविक–nature से

ही संचालित होने के कारण स्वतः चालित होती रहती है। गीता की अवस्था रहनी में उजागर हो जाती है कि गुण, गुण में ही बर्तने लगते हैं। हम अभ्यासियों की रहनी को अवस्था में ढालने के लिये संयम–नियम की आवश्यकता नहीं होती है। हम अभ्यासियों के लिये Divine से एक हो जाने के लिये प्रेम एवं भक्ति में डूबे रहने के अभ्यास की ही आवश्यकता होती है। ईश्वर–प्राप्ति उसके ही ध्यान में डूबे रहकर, उनकी सतत्–याद में लय रहकर ही हो सकती है। ईश्वर इच्छा से परे है इसी लिये उन्हें पाने की तड़प में समस्त–इच्छाएं विलीन हो जाती हैं । हमारे श्रीबाबूजी का यह कथन यहाँ सिद्ध हो जाता है कि ''बहार और बाग़ की सैर तो सबको पसंद आती है, किन्तु प्रेमी को तो वही चीज़ पसन्द आती है जो प्रियतम के ठिकाने की ख़बर दे''। मैंने हालत की प्राप्ति के बाद 'उनका' यह कथन भी सिद्ध हुआ पाया है कि ''होश गुम होते हुये जो होश हममें पैदा हो जाता है वही जीवन वास्तविक–जीवन है अर्थात् उनके कथनानुसार 'Life in life is the real life'. फिर भला बताइये कि वाह्य–जीवन–रहनी को अब कौन सम्भाले? तभी से लगता है कि यह सुचारू रूप से स्वतः ही संचालित होने लगती है। ऐसा लगने लगता है कि प्रकृति ने इसका संचालन खुद सँभाल लिया है और रहनी को मानो अपनी ही सहजता में ढाल लिया है। कैसा अचम्भा हो जाता है कि मैंने श्रीबाबूजी को लिखा कि ''न जाने क्या दशा हो गई है कि गुस्सा भी आता है तो मानो स्वतः अपना कार्य करके चला जाता है। लाज–शर्म, मान–मर्यादा सभी अपना कार्य करके ऐसे चले जाते हैं मानो ''मुझमें अब किसी के ठहर पाने के लिये कहीं कोई स्थान ही नहीं रह गया है''। जानते हैं कि 'उनका' संक्षिप्त में, किन्तु कितना सार–गर्भित उत्तर था! उन्होंने लिखा कि ''बिटिया तुम्हारा ख़त मिला पढ़वा कर सुना बहुत ही खुशी हुई– श्रीलालाजी सा. का शुक्रगुज़ार हूँ कि अब तुम्हारे अंदर का स्थान, ईश्वर के रहने का स्थान हो गया है– तुम्हें मुबारक हो–ईश्वर

तुम्हें खूब आगे बढ़ाये– 'आमीन'। उनका पत्र पढ़कर तो मैं जाने कहाँ चली गई कि फिर लौट ही न पाई। मेरी उनसे यही प्रार्थना है कि समस्त के हित यह शुभ वरदान उतारें– एवं सभी को सहज–मार्ग–साधना द्वारा ईश्वर–प्राप्ति के योग्य बनायें। सहज–मार्ग–साधना ही सशक्त साधना है एवं श्रीबाबूजी महाराज की कृपा एवं दृष्टि समस्त का सहारा है जो आदि–प्रकृति के गहन–रहस्य को भी समक्ष के प्रति उजागर करके मानो दैविक नेह–निमंत्रण भी दे रही है कि ''हे प्राणियों आज तो दैविक–समय तुम्हें पुकार रहा है कि यदि चाहना ही करनी है तो भूमा (Ultimate) की करो जो दिव्य–विभूति के पावन एवं दिव्य transmission द्वारा समस्त के लिये सरल, एवं सहज–सुलभ है। हमारे श्री रामचन्द्र मिशन का चौथा नियम 'जीवन ऐसा हो कि नेचर से मिल–जुल जावे'' यह चेतना प्रदान करके मानो हम अभ्यासियों के लिये पाँचवे नियम में पदार्पण करने का सहज–मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

■■■

➲ प्राणाहुति–एक दैविक–शक्ति है, जिसका प्रयोग मनुष्य के रूपान्तरण के लिये होता है। रूपान्तरण प्राणाहुति का प्रतिफल है।

– श्री बाबूजी

पाँचवा नियम

हमेशा सच बोलें और हर मुसीबत को मालिक की तरफ़ से अपनी भलाई के लिये समझें और उसका धन्यवाद दें।

श्री रामचन्द्र मिशन का पाँचवा नियम मनुष्य के अपने निर्माण के लिए अचूक औषधि है। सहज–मार्ग साधना अभ्यासी को सदा सच बोलने के लिए मजबूर कर देती है क्योंकि ध्यान में डूबे अन्तर की स्वच्छता विचारों में, भावों एवं कर्मों में भी श्रेष्ठता लाती रहती है और हम सदा सच बोलने के लिए मजबूर हो जाते हैं। 'मालिक' की ओर ध्यान लगा रहने से हर कष्ट, सुख–दुःख सब अपने 'मालिक' की तरफ़ से ही लगने लगते हैं। सांसारिक सुख–दुःखों को भोगते हुये भी ध्यान की एकाग्रता हम अभ्यासियों को 'उनके' ही प्रति निवेदित रखती है।

श्री रामचन्द्र मिशन के संस्थापक एवं समर्थ सद्गुरू श्री लालाजी सा. के दैविक लाल, दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी महाराज ने लिखा है कि "गुरू जिस्म नहीं होता है। जिस्म को गुरु मानने वाले लोग गुरू–पशु तो होते हैं किन्तु गुरु–भक्त नहीं हो पाते हैं"। सहज–मार्ग–साधना में यह कथन प्रत्यक्ष हो उठा है। आध्यात्मिक–क्षेत्र में सहज–मार्ग–साधना के सौंदर्य में 'श्रीबाबूजी' ने अभ्यासियों को ईश्वर–प्राप्ति का लक्ष्य दिया है और कहा है कि 'जिसे' प्राप्त करना है 'उसके' ही ध्यान में रहने का सतत्–प्रयास करें एवं जहाँ 'वह' विद्यमान है उस मन के मंदिर में ही ध्यान का प्रवेश रक्खें। इस पर भी सर्वोपरि सहायता है उनका दैविक–इच्छा–शक्ति द्वारा अभ्यासी–हृदय में ईश्वरीय–धारा का सतत्–प्रवाह जिसे पाते रहना ही उनकी सहज–मार्ग–साधना की दिव्य–गुर अर्थात् Divine technic है। मैंने पाया कि ईश्वरीय ध्यान में डूबे ध्यान द्वारा एक दिन हमारे हृदय में भक्ति का उभार आता है फिर एक दिन भक्ति में विभोर हुआ अंतर ईश्वर का पता पाकर उसके

विछोह को न सहन कर पाने के कारण दैविक–मिलन के लिये अधीर हो उठता है। मैंने कई लोगों को देखा है कि 'श्रीबाबूजी' के पास आये और कहा कि "हमें आपका system बहुत natural एवं दैविक–लगता है लेकिन बाबूजी हम तो गुरू कर चुके हैं"। तभी 'श्रीबाबूजी' ने कहा कि यही गुरू–पशु की स्थिति है। जो लगन Liberation के लिये जरूरी होती है वही चीज़ जिस्म को गुरु मानने के स्वयं बंधन के कारण (खूँटा) बन जाती है क्योंकि वह matter से योग पा जाती है। असल चीज़ या प्राण तो है 'उसके' द्वारा बताई गई ईश्वर–प्राप्ति की साधना की लौ लगना तभी हम अभ्यासियों के अंतर में दैविक–सौंदर्य या नूर फैलने लगता है। तमाम उम्र मूर्ति की पूजा, और सेवा में लगे मूर्ति के साथ में ही रहते हुये पुजारी को, पुजारी की ही संज्ञा दी जाती है– उन्हें भक्त नहीं कहा जाता है। श्रीरामचन्द्र मिशन में सहज–मार्ग–साधना में ध्यान में डूबे रहने एवं सतत्–प्राणाहुति का प्रवाह अपने श्रीबाबूजी के द्वारा पाते रहने पर ही मैंने भक्ति रस में सराबोर हुये परमानन्द की प्राप्ति के फलस्वरूप यह भी पाया है कि वियोग की व्यथा तपिश बनकर हमारे अंतर से भौतिक–तत्व (matter) को पिघलाकर बाहर फेंक देती है तब हमें जो अपना उज्ज्वल–स्वरूप देखने को मिलता है उसमें हमारे होने का होश नहीं रहता है तभी से हमारे मिशन के पाँचवें नियम की सत्यता, दशा के रूप में हमारे में मुखरित हो जाती है।

मैंने पाया है कि आदि–छवि की छटा में नहाई सहज–मार्ग–साधना आज मानव को उसका साँचा–स्वरूप प्रदान करके सौची सदाचार भरी रहनी प्रदान करती है। रहनी में कोई दिखावा नहीं, बाणी सच्चाई का ही प्रतीक हुई अंतर को साँची सहज–स्थिति प्रदान करती है। यहाँ तक कि हमारे वाह्य–रूप में आत्मिक–आकर्षण पैदा हो जाता है। अब पाँचवें नियम की दैविक–दशा (सदा सच बोलना) ही मानो हमारी बाणी को मुखरित करने लगती है। उसका कहना यही है कि जब हमारी जीवन–रहनी को खुद प्रकृति

या nature ने सँभाल लिया है तो भला आप ही बतायें कि मुख वही बोलेगा जो बोलना चाहिये क्योंकि प्रकृति में बनावट का कोई दाग नहीं होता है। हमारे मिशन के पाँचवे नियम के विषय में लिखने पर मैं यही पा रही हूँ कि सच तो खुद ही एक दशा है, जो किसी भी मुसीबत के एहसास से परे इसलिये रहती है कि nature या प्रकृति का रूझान तो अपने मालिक श्रीबाबूजी की ही ओर झुका रहता है। बेसुध हुई सुधि में कभी अपना भाव न आने के कारण वह दिव्यता से ही सतत् योग पाये हुये रहने लगती है। तभी हमें ऐसा अनुभव होता है कि मानो सच (सत्य) ही मेरा स्वरूप हो गया है जो दैविक–विशुद्धावस्था का प्रतीक होता है। इस अवस्था की प्राप्ति होने पर शब्द 'भलाई' का सतत् साम्राज्य हो जाता है और 'बुराई' शब्द ही समाप्त हो जाता है। मैंने अपने श्रीबाबूजी महाराज को यह दशा लिखी थी कि ''दैविक–पवित्रता ही मेरा स्वरूप हो गया है जिधर भी निकल जाती हूँ मानो पवित्रता का प्रवाह चारों ओर प्रवाहित हो जाता है।'' जीवन की सत्यता में ही विलीन–जीवन मानों उसके (ईश्वर के) प्रति खुद ही धन्यवाद का स्वरूप हुआ रहने लगता है।

मैंने 'श्रीबाबूजी' को लिखा कि ''अंतर, बाहर की दशा में कुछ ऐसा सामन्जस्य हो गया है कि व्यवहार में भी सत्य की झलक, झलक उठती है।'' तो श्रीबाबूजी महाराज ने मुझे लिखा कि मैं बहुत खुश हूँ कि तुम्हारे में वह विशुद्धावस्था प्रवेश पा गई है कि ''भीतर, बाहर एक समान''। फिर श्रीबाबूजी महाराज ने लिखा कि मेरी खुशी का ठिकाना नहीं है कि ''तुम वैसी हो गई हो जैसा कि होना चाहिये। अब आगे तुम जो लिखोगी उसका मुझे इंतज़ार है।'' प्रिय भाइयो, सच ही मैंने उन्हें फिर अपनी उस दशा के बारे में लिखा कि ''एक दिन मैं बैठी थी कि अचानक मुझे लगा कि मेरी जीभ में से एक केंचुल या covering सी उतर गई है। बस उसी क्षण से मुझे लगा कि बाणी जो कुछ भी बोलती है सच ही मालूम होता है। किन्तु बोल क्या रही है इसका न तो उसे पता था और न मुझे ही पता था। ऐसा लगता था

कि मानो मेरी दशा 'Divine Truth' का सॉचा स्वरूप बन गई है। चारों ओर जहाँ भी दृष्टि जाती थी मानो Truth का ही पसारा दिखाई देता था। यहाँ तक कि दृष्टि एवं व्यवहार में भी Truth ही झलक उठा था। भाइयों मैं क्या लिखूँ जबकि 'मैं' ही नहीं थी– कदाचित् जीवन था। यही Truth था जो श्रीबाबूजी महाराज ने मुझे लखाया था। भाई लखना (देखना) भी क्या था लगता था मानो दृष्टि अपलक हुई कहीं स्थिर होकर अपने होने को ही भूल गई थी, और सच (Truth) का सच तो यह है कि फिर दृष्टि कभी लौटी ही नहीं। सत्य–दशा तो मैंने अपनी सहज–मार्ग–साधना के प्रारंभ से ही यही पाई थी कि दृष्टि तो अपलक हुई मेरे श्रीबाबूजी के Divine सौंदर्य में समा गई थी फिर वापस कहाँ से लौटती? और ध्यान? वह तो अपनी गरिमा को भूलकर सदैव के लिये उनमें ही लय हो चुका था। 'श्रीबाबूजी' महाराज ने ऐसी दैविक–दशा का प्रसाद अपनी इस बिटिया में उतारने के बाद मुझे लिखा था कि "वास्तव में तुम भौतिकता (matter) से परे वैसी हो गई हो जैसा ईश्वर ने तुम्हें भेजा था। Self का Truth तो अब reveal (खुल) ही हो चुका है यानी Self-realization तो तुमने पाया ही है, अब वह दिन भी ईश्वर अवश्य और शोघ्र लायेंगे कि तुम्हें "God realization" की दशा प्राप्त होगी क्योंकि 'उसने' तुम्हारे घर के स्थान (I) में प्रवेश पा लिया है।" ऐसी ही हर दशा के बारे में 'उनका' उत्तर पाने पर मैंने यही पाया है कि सहज–मार्ग–साधना के तीनों अंग–ध्यान, सफाई एवं प्रार्थना, को अपनाने पर हमारे मिशन के दसों नियमों की दैविक–अवस्था मानो हमारे समक्ष अपने को तौलते रहने के लिये, दैविक–मापदण्ड के समान हैं। जब हम कार्य के कर्ता नहीं होते हैं तो जीवन–सत्यता का प्रतीक बन जाता है अर्थात् समस्त के प्रति अपनत्व का प्रतीक बन जाता है। हमारे अभ्यासी जीवन को श्रीबाबूजी ने मिशन के पाँचवे–नियम के सौंदर्य से सँवार कर अब छठे–नियम के दैविक–सौंदर्य में सौंदन करने के लिये उसमें ही प्रवेश दे दिया है।

■■■

छठा नियम

कुल जगत को अपना भाई समझे और सबके साथ ऐसा ही व्यवहार करे।

हमारे श्रीबाबूजी महाराज का यह कथन है कि "गहराई में डूबे बिना सच्चा मोती नहीं मिलता है"। मैंने भी यही पाया है कि अपने मिशन के नियमों की दशा के सौंदर्य में डूबे बिना आत्मिक दशाओं की गहनता के बारे में कुछ भी लिख पाना असंभव है। श्रीबाबूजी ने एक पत्र में मुझे लिखा था कि "Be practical", तब मैं इस छोटे से वाक्य का अर्थ नहीं समझ पाई थी किन्तु अब मैंने यही पाया है कि यदि कोई हर दशा को परमानन्द का भोक्ता होकर उस दशा में लय हो जाता है तब वह जो भी लिखता है तो ऐसा लगता है कि वह दशा ही समक्ष में आकर हमें अपने विषय में बता रही है--

अब देखिये कि श्रीबाबूजी महाराज की दैविक--प्राणाहुति--शक्ति का अंतर में सतत् प्रवाह पाते रहने से हम कितनी--सहजता से अहं के बंधन से मुक्ति पा लेते हैं एवं मिशन के दस नियमों की अवस्थाओं को दैविक--सदाचार द्वारा प्रेम की अनुपम--दशाओं का श्रृंगार पाते हुये प्रथम दो नियमों के आधार पर ऐसी दैविक--सानिध्यता (ईश्वर हृदय में है -- मन के मंदिर में मौजूद है) पाकर फिर अन्य दो नियमों--तीसरे, चौथे के आधार पर हम जिस प्रकार से दैविक--सामीप्यता के विशुद्ध एवं दैविक प्यार में पग कर, दैविक--Truth में लय होकर रचना के बीज--स्वरूप दैविक--बन्धुत्व brother-hood के प्रवाह का स्पर्श पाकर कृतकृत्य हो उठते हैं कि उस अनुभव का पूर्ण रीत्या लिख पाना केवल श्रीबाबूजी की कृपा से ही सम्भव हो पाया है।

कितनी पावन एवं प्रिय दशा है कि "कुल जगत को अपना भाई समझें और सबके साथ ऐसा ही व्यवहार करें"। लेकिन यह तभी तो सम्भव हो सकता है जबकि जैसे प्रकृति या Nature का समस्त कार्य सुचारू रूप से स्वतः ही क्रियान्वित होता रहता है क्योंकि उसका योग सदैव ईश्वरीय–शक्ति से हुआ रहता है– बिल्कुल उसी प्रकार से ध्यान में लय रहने से स्वभावतः यानी स्वतः ही सतत्–स्मरण द्वारा हमारा योग ईश्वर से स्थापित हो जाता है तब से भौतिकता के भी सारे कार्य स्वतः ही हमारे द्वारा होते रहते हैं। बस फिर कर्ता न होने के कारण हम कार्यों के अक्स से परे यानी संस्कारों से परे पावन जीवन–रहनी में भक्ति में लय हुये भाईचारे के अपनत्व में डूबे हुये जीने लगते हैं। प्रार्थना यही है कि वह दिन मेरे बाबूजी अवश्य लायें कि मानव–मात्र ऐसी अद्भुत, अनूठी दैविक–रहनी के परमानन्द का रसास्वादन प्राप्त करे। दैनिक–जीवन की क्रिया शुद्ध सदाचार में भीगी स्वतः ही संचालित रहती है जो अति natural होती है, श्रीबाबूजी का यह कथन दैविक–दशा के रूप में हमारे अंतर में उज्ज्वल हो उठता है कि "दैनिक–जीवन की रहनी भी पूजा ही हो जाती है। ईश्वरीय–शक्ति से ही योग पाया हर मानव अपना प्यारा भाई ही लगता है। और यह अनुभव वैसे ही व्यवहार में भी स्वतः ही क्रियान्वित हो जाता है। हमें कोशिश नहीं करनी पड़ती है। ऐसी दशा को पाना तब और भी सरल हो जाता है जब खुद को दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी महाराज को ही समर्पित कर दे। इसका एक लाभ हमें यह भी मिलता है कि जिस सीमा तक हमारा अहं गलता जाता है उस सीमा तक 'उनकी' दैविक–प्यार भरी दृष्टि हमारे ऊपर सीधी पड़ने लगती है। उनकी दिव्य–दृष्टि के फलस्वरूप ईश्वर–प्राप्ति की लगन में डूबे हुये अहं से रहित हुये हम हर पल ईश्वर में ही लय होते जाते हैं। दैविक–जीवन–रहनी का यही दैविक–भेद है जो श्रीबाबूजी महाराज ने दैविक दशा के रूप में आध्यात्मिक–उन्नति के क्षेत्र में अब

मानव–मात्र के लिये सुलभ कर दिया है। मुझे भली–भाँति स्मरण है कि अभ्यास काल में अनेकानेक दशाओं की प्राप्ति के बाद मैंने अपने श्रीबाबूजी को लिखा था कि ''ऐसा लगता है कि आत्मा, परमात्मा में विलीन हो गई है। कोई भी आत्मा के विषय में बात करता है तो मुझे लगता है कि मैं सुन तो रही हूँ परन्तु बात न जाने किस विषय में हो रही है जो न मुझमें है और न मैं इस विषय में कुछ जानती हूँ। इतना ही नहीं कि ऐसी दिव्य–दशा में मुझे प्रवेश मिल गया है कि ''जित देखूँ तित श्याम भई''। हम सब एक परमात्मा के ही बालक हैं फिर ईर्ष्या, द्वेष, छोटा, बड़ा, ऊँच, नीच का भाव ही नहीं रह जाता है। लगता है कि भेद–भाव का बीज ही समाप्त हो गया है।'' सहज–मार्ग–साधना में बाबूजी ने ईश्वर–प्राप्ति का लक्ष्य बीज रूप में हमें दिया है इसी लिये उसके सिंचन के लिये भक्ति–रस स्वयं ही शुरू हो जाता है। सत्य ही है जैसा बीज होगा फल भी उसके अनुरूप ही मिलेगा। कदाचित् यही कारण है कि इसमें अभ्यासी को किसी भी नियमानुसार बनने का प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। श्रीबाबूजी का कथन कि ''सहज–मार्ग में मैंने brother-hood का प्राण फूँका है जो हम अभ्यासियों के लिये ऐसा मापदंड है कि यदि हमारे में यह दशा पैदा नहीं होती तो समझना चाहिये कि हमने सहज–मार्ग साधना को अभी अपना नहीं पाया है। इतना ही नहीं यह दशा लिखने पर कि 'मेरा तो यह हाल है कि जड़, चेतन, पशु, पक्षी सभी से ऐसी अपनाइत अंतर में होती है कि लिपट जाने को जी चाहता है।'' उत्तर में उन्होंने लिखा था कि ''तुम्हें यह हालत मुबारक हो। आत्मिक–उन्नति का श्रेष्ठ स्तर समस्त के हित एक ही भाव को अंतर में उज्ज्वल कर देता है–किन्तु तुम देखोगी कि व्यवहारिक–रहनी में कोई ऐसी बात नहीं पाओगी जिससे लोग तुम्हें पागल समझें। जानती हो क्यों? ''क्योंकि स्वयं nature रहनी की डोर को सँभाल लेती है।'' किन्तु हमारे वाह्य व्यवहार में आंतरिक–अपनाइत की सच्चाई भरी रहती है।

प्रश्न यही उठता है कि आख़िर, यह ईश्वर–प्रदत्त–दशा बाधित कैसे और क्यों हो गई? क्यों आदमी को आदमी दिखाई नहीं देता है? इसका उत्तर अनुभव के उपरान्त मैंने यही पाया है कि जब अपनी निगाह का रूख़ मुख्य – दैविक–बिन्दु से बिछुड़ जाता है तो इसके हटते ही हमारी निगाह खुद (अहं) पर ही टिक जाती है और खुदी का फैलाव प्रारंभ हो जाता है। क्रमशः इस पसारे में ही घूमते रहने से हम वास्तविकता (असल) को भूल जाते हैं। फलस्वरूप हमारे विचारों के सृजन और ध्यान के रुख का केन्द्र खुदी के फैलाव में ही बन्दी होकर संकुचित हुआ रह जाता है। हमारे mind का संचालन अहं से जुड़ा रहने के कारण आंतरिक–अपनाइत का तार खंड–खंड होकर बिखर जाता है।

अब देखें कि छठे नियम की पूर्णता में नहाया, समस्त के प्रति अपनाइत से नमित हुई जीवन–रहनी अब किसी के द्वारा भी पहुँचाई तक़लीफ़ के ख़्याल की ओर से भी अछूती रहती हुई, प्रिय की निकटता की श्रेष्ठ–दशा में डूबी दूसरों को भी वह प्रसाद देते हुये मानो अब अपने मिशन के सातवें नियम में प्रवेश पा रही है। यहाँ हम यह भी भूल जाते हैं कि हम कहाँ से आये हैं और अब कहाँ खड़े हैं।

■■■

➲ हमें आचार–संहिता का पालन करना चाहिये, किन्तु आधार उच्चतम् अनुसरण का लेना चाहिये और सहायता प्रयास की लेनी चाहिये। बस 'लक्ष्य' पूर्ण हो जाता है।

– श्री बाबूजी

सातवाँ नियम

अगर किसी से कोई तक़लीफ़ पहुँचे तो उसका एवज़ लेने का ख़्याहां न हों बल्कि मालिक की तरफ़ से समझें और उसका शुक्रिया अदा करें।

सदैव से यह कहावत सुनते आ रहे हैं कि जो कुछ कठिनाइयाँ, दुःख–सुख हम पा रहे हैं वह सब हमारे पूर्व कर्मों का एवं पूर्व–संस्कारों का ही फल है। हम मानते भी यही हैं कि "काहु न कोऊ सुख–दुःख कर दाता, निज–कृत कर्म भोग सब भ्राता"। फिर भी क्या कारण है कि अपने दुःखों का कारण हम दूसरों को मानकर उन्हें हानि भी पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं और उनसे घृणा भी पैदा कर लेते हैं– जबकि मुख से यही कहते है कि "सब कुछ हमारे भाग्य का ही खेल है"। भाइयों; कारण केवल यही है कि हमारा यह मानना विचारों तक ही सीमित रह जाता है। ऐसी विशुद्ध–दशा हमारे अंतर की न रहने के कारण हमारी रहनी विचारों से ही बँधी रहती है। चाहे वह उसमें नफ़रत, ईर्ष्या, द्वेष का विष उतारे अथवा कभी विशुद्धता का होश भी प्रदान करे। इस तरह हमारी रहनी में एक समानता नहीं रहती है– वह 'भटकन' ही से घिरी रहती है। ऐसा जानते हुये भी संयम–नियम से हम इसे क़ाबू करके एक सा बनाना चाहते हैं लेकिन सत्य–दशा से फासला या दूरी रहने के कारण विशुद्ध फल नहीं उत्पन्न हो पाता है।

मानव की मनस्–शक्ति का ह्रास हो जाने के कारण, वृत्ति की चंचलता पर क़ाबू नहीं रह पाता है। कदाचित् यही हमारी अपनी हार का कारण हो गया है। मानव की इस गंभीर मनस्–दुर्बलता को दूर

करने हेतु ही हमारे श्रीबाबूजी महाराज सहज–मार्ग में सहज–साधना (ध्यान) का मार्ग लेकर आये हैं। 'उनका' कथन कि "सहज–मार्ग ऊपर से उतरा है" इस दैविक तथ्य का द्योतक है कि मानव की ऐसी दुर्बलता को सहन न कर पाने पर स्वयं सृष्टिकर्ता ने ही ऐसे system को ऊपर से श्रीबाबूजी के द्वारा उतारा है। 'श्रीबाबूजी' महाराज की शक्ति एवं गौरव–गरिमा का प्रतीक सहज–मार्ग पद्धति मानो समस्त के हित आध्यात्मिक आफ़ताब (सूर्य) की भाँति देदीप्यमान हो रहा है। श्रीबाबूजी की Divine निगाह, वाणी से समयानुसार साधना के उपयुक्त सँवारी हुई यह दैविक–साधना मानों ध्यान की टकटकी में खुद Divine को ही भर लाई है। यही कारण है कि श्रीबाबूजी के बताये अनुसार कि "ईश्वर हृदय में विद्यमान है", यह एहसास हमें ऐसे ध्यान में बैठने के कुछ समय में ही मिलने लग जाता है। ईश्वर के ध्यान में डूबा विचार प्रहरी के सदृश आंतरिक शुद्धि की रक्षा मे लग जाता है एवं अन्य विचारों को भी बेज़ा हो जाने के कारण अंतर में आने ही नहीं देता है। इसी लिये खुद को व अंतर के दैविक आनन्द को सुरक्षित रखने के लिये किसी भी बुरी बात की तरफ़ सोच पाने में हम असमर्थ ही रहते हैं। यही कारण है कि श्रीबाबूजी महाराज द्वारा सहज–मार्ग–साधना में ईश्वर–प्राप्ति के लक्ष्य का बीज डालने से उसी प्रकार की बातों में यानी हमारा mind सदाचार की प्रक्रिया में लयलीन रहने लगता है। आगे आध्यात्मिक–उन्नति पाते हुये हमारे विचारों में, एवं ध्यान में जो अन्य–संस्कारों के नक्स बने रहते हैं वे सब स्वतः ही मिटना शुरू हो जाते हैं और एक दिन? सतत्–स्मरण के परमानन्द में डूबे हुये जब प्रथम नक्स के फलस्वरूप अन्य विचार आते हैं जो हमें पसन्द नहीं होते हैं मानो वे संस्कार मात्र इतना सा ही भोग देकर समाप्त हो जाते हैं– क्योंकि प्रकृति का नियम है कि हमारी हर चीज़ वैसी ही स्वच्छ रहे जैसी कि हमारी शुरु की हालत में थी।

आठवा नियम

भोजन करने के वक्त जो कुछ मिल जावे, खुशी से खावे और ईश्वर की याद में भोजन करे। शुद्ध और पवित्र कमाई का ख्याल रक्खे।

आज मुझे पुनः पुनः स्मरण आता है कि हर संस्था में मनुष्य को संयम–नियम द्वारा अपनी जीवन–रहनी एवं स्वभाव को ढालने के लिये संस्था के उपयुक्त–जीवन बनाने के लिये कुछ नियमों के पालन पर ही विशेष बल दिया जाता है। यह सत्य भी है कि यदि हमारी रहनी आम लोगों से अलग एवं शुद्ध–विचारों से जुड़ी हुई नहीं होती है तो लोग संस्था एवं संस्थापक की ही कमी का अंदाज़ा लेते हैं और लेना भी चाहिये क्योंकि आम लोगों की जीवन रहनी एवं सोच की तरह से यदि हमारी भी रहनी और सोच है तो फिर हमारी संस्था की विशेषता ही क्या रही।

श्रीरामचंद्र मिशन के अंतर्गत 'सहज–मार्ग' साधना में मानव–हित ईश्वर–प्राप्ति के पश्चात् Ultimate Reality (भूमा) तक पहुँच पाने का श्रेष्ठ लक्ष्य श्रीबाबूजी ने प्रदान किया है जिसे अपनाकर मैंने यह अनुभव किया कि यह नितान्त आध्यात्मिक–संस्था है जो नियमों के बजाय Reality से ही योग पाये हुये है। एक भेद इसमें मैंने यह पाया है कि जब तक सहज–मार्ग साधना के अभ्यास तक ही हमारी साधना सीमित रहती है तब तक तो हमें इसमें समाहित ध्यान, सफाई, प्रार्थना एवं नियम सब कुछ याद रहता है। किन्तु ऐसी अलौकिकता तो मैंने तब इसमें देख पाई कि जैसे ही हमारी साधना की सीमित सीमा का बंधन टूट जाता है, और हम ध्यान की धारा में बहते हुये हृद–देश (Heart Region) के विराट्–क्षेत्र में पहुँचते हैं तभी से मानो हम ध्यान के बजाय ध्येय (ईश्वर) से योग पा जाते हैं। संस्था के बजाय संस्थापक की पावन, एवं दैविक–प्यार भरी निगाह में पलते हुये सहज–मार्ग की Reality सें स्वतः ही जुड़ जाते हैं। इसी बहाव में

कैसा अनोखा एवं अलौकिक ताल–मेल है जो देखते ही बनता है। देखें कि जो चीज़ भौतिकता का सेंक पाकर ठोस पड़ गई थी और अंतर में छुपी हुई वास्तविकता पर छा गई थी– वहीं चीज़ ध्यान के कारण ईश्वरीय–सामीप्यता का सेंक पाकर पिघलती गई और अंततः अंतर में छुपी उस वास्तविक–हालत को या Divine योग को पुनः निखार लाती है। यही कारण है कि भौतिकता में पनपी हालत अपने कर्मों के भोग को दूसरों के द्वारा दी हुई तक़लीफ़ समझकर ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध में डूबे अबोध क्रियाओं के बंधन में हमें बाँधती रही। आज श्रीबाबूजी महाराज द्वारा सहज–मार्ग साधना में ध्यान व विचारों को अंतर्मन में मौजूद ईश्वरीय–याद की लगन में जोड़े रखने से, ईश्वरीय–सामीप्यता का पुनः पुनः सेंक मिलते रहने से हमारी वास्तविक–दशा Divine योग पाकर अब फिर से ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि से मुक्त हुई अंतर्मन की विशुद्ध–दशा सदाचार से सज गई। चाहकर भी किसी को अपनी तक़लीफ़ का दोषी न पाकर एवज़ की भावना से परे होकर अभ्यासी ईश्वर की शरण में ही रहने लगते हैं। फिर किसी से बैर–भाव बन ही नहीं सकता है और दैविक–शराफ़त क्रमशः हमारे समस्त system (कुल) में प्रवेश पा जाती है। अंतर्मन की विनम्रता के तो मानो हम स्वरूप ही हुये रहते हैं। इस प्रकार आप देखें कि श्रीबाबूजी महाराज हमारे में पूरी दैविक–दशा उतार कर हमें हर नियम के बंधन से ही नहीं बल्कि भौतिकता के अस्वाभाविक–लगाव के बंधन से भी स्वतंत्र कर देते हैं। दशा ऐसी हो जाती है कि– ''कोई माया कोई भय कोई भ्रम न रहा, कोई परदा कोई संशय न रहा, आईना शक्ल तेरी क्या जाने, तू रहा पास तो फिर मैं न रहा''। जब (मैं) Ego न रहा तो फिर Reality ही शेष रह गई। अब सातवें नियम की ग्रन्थि सुलझ गई और हमें आठवें नियम की स्थिति में जागरूक कर गई।

■■■

श्रीबाबूजी महाराज द्वारा सहज–मार्ग–साधना का यह भेद भी समक्ष में व्यापक हो जाता है कि यह साधना अभ्यासी जीवन रहनी को 'I-ness' के बंधन से मुक्ति दिलाकर आदि–प्रकृति से योग देती हुई अर्थात् unnatural living से natural living की ओर मोड़ देती हुई बहुत शीघ्र हमें हमारी Reality से सम्बन्धित कर देती है। मैंने स्वतः ही यह सत्य अपने में उज्ज्वल हुआ पाया है कि दैनिक जीवन रहनी से मेरे होने का भाव अर्थात् 'अहं भाव' क्रमशः माइनस होता रहा और अंत में फिर 'मैं' या अहं भाव के स्थान अर्थात् 'I' के बजाय कब 'you' अर्थात् Divine जुड़ गया कि मुझे पता ही न रहा। जब मैंने श्रीबाबूजी को लिखा कि "कभी कपड़े पहिनने का भी होश नहीं रहता है और हाथ दरवाज़ा खोलने को उठ जाते हैं। लेकिन तुरंत मानो मेरे हाथ किसी हाथ का अनजाना एवं पावन–स्पर्श पाकर एकदम से स्वतः ही कपड़े पहनने लगते हैं फिर द्वार खोल लेते हैं।" श्रीबाबूजी ने तुरंत ही उत्तर दिया कि "तुम्हारी अवधूत गति है– चाहिये तो यह कि इस हालत में या तो सीखनेवाला सिखानेवाले के साथ रहे अथवा सिखानेवाला सीखनेवाले के साथ रहे। लेकिन हमारी गृहस्थ–संस्था में अभी की circumstances को देखते हुये ऐसा संभव नहीं है– लेकिन मैं न सही समर्थ गुरु की Divine दृष्टि तो तुम्हारे पर बनी हुई है– हालत लिखती रहना।" मैंने तो यही पाया है कि श्रीरामचन्द्र–संस्था के अन्तर्गत श्रीबाबूजी ने भले ही दस नियम रक्खे हैं, किन्तु वास्तव में संस्था के प्राणों में उन्होंने Reality फूँकी है। यही कारण है कि अभ्यास की प्रक्रिया की सीमा में रहते हुए तो यह नियम अभ्यासी के लिये पालनार्थ रूप में हैं परन्तु इसकी Reality में प्रवेश पाते ही मैंने प्रत्येक नियम को श्रीबाबूजी की कृपा एवं शक्ति द्वारा दैविक–शक्ति से charge पाया है, जो लय–अवस्था प्राप्त होते ही charging शक्ति सहित मानो हमारी रहनी में स्वतः ही उतरते आते हैं। ऐसा लगता है कि आदि–प्रकृति के राज़ को खोलने के लिये ही श्रीबाबूजी ने इन दस नियमों को सदाचार स्वरूप ही अपनी संस्था में स्थान दिया है। जानते हैं वह राज़ या भेद भी कैसा है? कि श्रीरामचन्द्र मिशन संस्था

से जुड़ते ही यह नियम अभ्यासी के हित मानो पालनार्थ होते हैं किन्तु अंतर में Divine के ध्यान में डूबते ही जैसे–जैसे ध्यान में से एवं विचारों में से भौतिकता का रंग साफ़ होता जाता है तो ये नियम मानो हम अभ्यासी के लिये अंतर रहनी में उतरे हुये दैविक–सौंदर्य का स्वरूप बन जाते हैं, और हम दृष्टा–मात्र हुये अपनी जीवन–रहनी में उतरे ऐसे Divine सौंदर्य के साक्षी हुये से रह जाते हैं। वह भी ऐसे कि जब इन नियमों को कोई पढ़ता है या इनके बारे में कोई बोलता है तो लगता है कि यह सब कुछ मेरे अंतर में समाया हुआ है। अब सहज–मार्ग–साधना की यह natural-Divine beauty देखें कि केवल ध्यान द्वारा दैविक–लगन के साथ सतत्–प्रयत्नशील रहते हुये हम अभ्यासियों के हित, मानो इसमें हर ज़रूरी वर्णित चीज़ स्वभावतः ही मानो अपना भेद हमारे समक्ष स्पष्ट करके अपनी सत्यता एवं शक्ति के साथ हमारे अन्तर में ईश्वरीय–प्रत्यक्षता प्रदान करने के साथ ही प्रवेश पाती जाती है। ध्यान, अपना ठिकाना बताकर मानो Divine को हमारे अंतर में प्रकट करके खुद लय हो जाता है। सफ़ाई खुद अपनी Divine विशुद्धता प्रदान करके बाबूजी में ही लय हो जाती है। प्रार्थना खुद प्रार्थी बन कर उनके चरणों में समाहित हो जाती है। इसका दैविक–फल हमें ऐसी श्रेष्ठ–दशा प्रदान करता है कि लगता है कि हमें ईश्वरीय–गति प्राप्त हो गई है। अर्थात् Divine सालोक्यता को प्राप्त हुये हम अर्थात् ईश्वरीय–देश में रहनी पाये हुये हमें भोजन करते हुये ईश्वरीय–प्रसाद का ही भान होता है। और इधर भौतिक–रहनी में ध्यान में खोये रहने से हमारे द्वारा शुद्ध–कमाई स्वतः ही होती है। संसार के प्रति अपनत्व का भाव रहने से पवित्र कमाई के अतिरिक्त हमें कुछ पता ही नहीं रहता है। भक्ति में डूबे हुये भक्तिमय होकर खाना खाते हुये मन सतत् ही एक अनजानी खुशी से झूमता रहता है। जानते हैं क्यों? क्योंकि चीज़ के स्वाद के बजाय अनजाने ही हमें आत्मिक–ईश्वरीय–आनन्द का ही सतत् रसा–स्वादन होता रहता है। मुझे अब यह भी याद आ रहा है कि साधना के प्रारंभ में ईश्वर की याद में भरकर खाना खाने से लगता था कि खाना मानो शुद्ध

होकर हमें शुद्धता का ही वरदान दे रहा है। पानी भी दैविक–प्राणाहुति का पान समझ कर पीने से मानो ठंडी शान्तिमई पावन–शक्ति की धारा की अनुभूति अपने में मिलती थी। इस तरह से लगता था कि नस–नस में, कण–कण में ईश्वरीय–शक्ति–धारा ही प्रवाहित है। अब तो दशा को व्यक्त कर पाना भी कठिन है। मानो बाज़ी जीती गई है। फिर भी 'बाबूजी' ने लिखा था कि ''अभी आगे, बहुत आगे चलना है– आधार (लक्ष्य) श्रेष्ठ होता है तो कमाई भी शुद्ध ही रहती है। चाहे आध्यात्मिक–क्षेत्र हो अथवा भौतिक क्षेत्र हो।

आज शुद्ध और पवित्र कमाई का ख़्याल न रखने के कारण ही मानव के विचारों में अशुद्धता व रहनी में बनावट आ गई है। किसी भी प्रकार से धन कमाने की होड़ में वह इन्सान से हैवान बन गया है इसी कारण श्री बाबूजी ने अभ्यासियों को प्रत्येक कार्य ईश्वर की याद में रहकर करने को कहा है जिससे अनका अन्तर्मन विशुद्ध होता जाये। आज प्राणाहुति की पावन व दृढ़ शक्ति हर क्षेत्र में उनकी सहायता के लिए तैयार है। सहज–मार्ग का हर नियम मानों हमें अस्वाभावितक रहनी से स्वाभाविक रहनी की ओर ले जाता है जो अपने जाल को तोड़कर दैविक–स्वतंत्रता प्रदान करता है। अब हमें सहज–मार्ग के नवें नियम की स्थिति का ज्ञान स्वतः होने लगता है।

■■■

➲ सत्यता क्या है? सत्यता आधार रहित अवलम्ब है और परिपूर्णता है जब सारी शक्तियाँ इतनी विकसित हो जायें 'संतुलन' निरन्तर बना रहे।

– श्री बाबूजी

नवां नियम

अपना रहन–सहन और व्यवहार ऐसा उम्दा बना लें कि जिसको देखने से लोगों में नेक–ख्याली का एहसास हो और लोग उससे मुहब्बत करने लगें।

सहज–मार्ग का नवाँ नियम हमारे वाह्य रहन–सहन और व्यवहार से सम्बन्धित है। साथ ही वह इस ओर भी इशारा करना है कि हमारी आन्तरिक शुद्धता ही दूसरों में हमारे प्रति कशिश और प्रेम पैदा करती है। सच तो यह है कि 'ईश्वर हमारे हृदय में विद्यमान है' ऐसा ध्यान रखने से हमारी चेतना बराबर इस ओर लगी ही रहती है कि हमारे रहन–सहन में, व्यवहार में कहीं भी, कभी भी कोई ग़लत बात न आने पाये। 'ईश्वर सबके अंदर है' ऐसा भाव जब साधना द्वारा हमारे अन्तर में विकास पाता जाता है तो समस्त के प्रति आंतरिक अपनाइत स्वतः ही हमारे व्यवहार एवं रहन–सहन में प्रवेश पाती जाती है। यही कारण है कि मैंने श्रीबाबूजी को लिखा था कि "मैं जहाँ भी चली जाती हूँ, सबको प्यार भरा ही पाती हूँ।" किन्तु सच तो यही है कि वाह्य रूप में नियम पालन से अधिक साधना में तन्मय हो जाने से जो भी बातें साक्षात्कार पाने के लिए आवश्यक हैं, वे सब हममें स्वतः ही प्रवेश पाने लगती हैं।

अब आप ही बताइये भला कौन समझ पायेगा इस दैविक रहस्य को कि सहज–मार्ग–साधना के मुख्य तीन अंग ध्यान, सफ़ाई व प्रार्थना सभी को यथावत् अपनाने का हम अभ्यासियों को आध्यात्मिक–परिणाम क्या मिलता है? तो सुनिये कि जब 'श्रीरामचन्द्र मिशन' के प्राण स्वरूप अधिष्ठाता श्रीबाबूजी महाराज में सहज ही हमें लय अवस्था प्राप्त हो जाती है तभी हमें आध्यात्मिक अनन्त–यात्रा की

सहज एवं सीधी राह मिल जाती है। जानते हैं क्यों? क्योंकि सहज--मार्ग–साधना में अंतर में ईश्वरीय–मौजूदगी का सतत् ध्यान रखते रहने से हमें समक्ष में इसके अधिष्ठाता की सामीप्यता की दशा स्वतः ही प्राप्त हो जाती है। दैविक स्वरूप होने के कारण स्वतः ही 'उनके' प्रति हमारा आत्म–निवेदन प्रारम्भहोकर हमारे अहं–भाव को मानो 'उनके' समर्पित करने लगता है– एक दैविक–चमत्कार यह मैंने पाया है जिसे पूर्णरूपेण वर्णन कर पाना मेरी क्षमता से परे है लेकिन आज जब 'वे' स्वयं ही इस लेखिनी द्वारा सब कुछ समस्त के हित खोलने जा रहे हैं तभी आज मैं यह दैविक भेद लिख पाने का साहस जुटा सकी हूँ। तो सुनिये ! मैंने पाया कि एक ओर तो आत्म–निवेदन से समर्पित हुआ अहं–भाव हमें अपने 'श्रीबाबूजी' के प्रति अनुभव होता है किन्तु दूसरे ही क्षण हालत लिखते समय लेखिनी शब्द 'ईश्वर' का ही प्रयोग करती है 'बाबूजी' शब्द का नहीं। ऐसा इसी लिये होता है कि उन्होंने सहज–मार्ग–साधना में हमें लक्ष्य 'ईश्वर–प्राप्ति' का दिया है मानो 'वे' हमें लक्ष्य से जोड़ते हैं अपने से नहीं। ऐसा क्यों है? इसका भी दैविक–रहस्य उन्होंने मेरी लेखिनी द्वारा समस्त के हित उज्ज्वल कर दिया है– क्योंकि उन्होंने प्रथम तो समस्त के हित ईश्वर–प्राप्ति का लक्ष्य दिया है, परन्तु साक्षात्कार के बाद ईश्वरीय–मुख्य केन्द्र में गोता देकर 'सत्य–पद' पर प्रतिष्ठित करने वाले तो स्वयं वे ही हैं और यहीं से उनका यह गहन–भेद जो अब समस्त के लिये उज्ज्वल हो जाता है कि वे "Ultimate" से उतरी हुई दिव्य–विभूति हैं– जिन्होंने भूमा के देश Centre Region का भेद आज पहली बार समस्त के समक्ष रख कर यह स्पष्ट कर दिया है कि Centre Region, भूमा के वैभव का देश है। उन्होंने ही सर्वप्रथम सत्य–पद पर मुझे प्रतिष्ठित करके Central Region के मुख्य–द्वार की 'पार्षद अथवा तुरिया–अवस्था' का राज़ खोलकर इस दशा का कुल विवरण मेरे द्वारा लिखवाया। इतना ही नहीं फिर भूमा के सात रिंग्स (Rings) के प्रारम्भ के द्वार के द्वारपाल की जगह मानो 'महापार्षद' अर्थात् तुरियातीत अवस्था को प्रदान करके उसका ज्ञान भी इस लेखिनी द्वारा प्राणीमात्र के समक्ष में रख दिया है।

रिंग्स के विषय में

Ultimate (भूमा) से दूरी होते जाने के कारण हर Ring का आकार क्रमशः छोटा होता गया क्योंकि Power का फैलाव भी सिमटता गया।

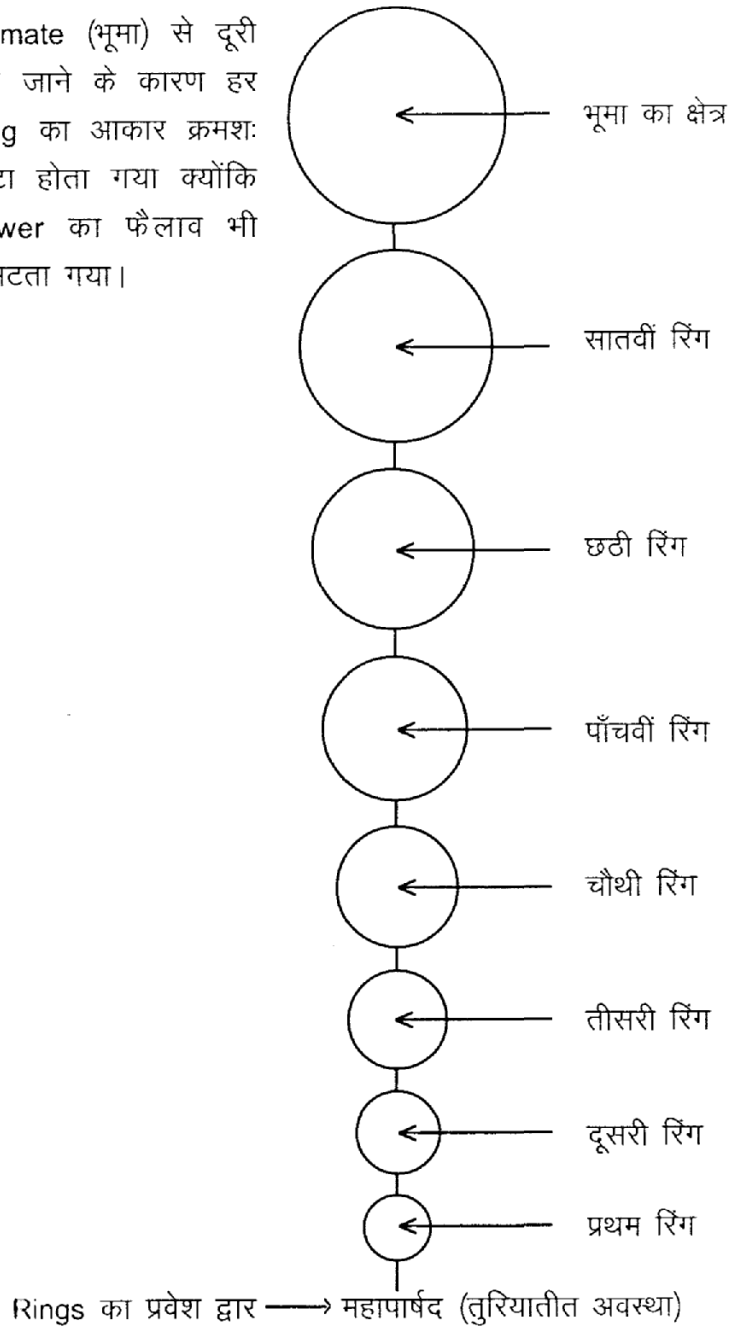

मैंने पाया कि जिस स्तर तक हमारा अहं गलता जाता है उस सीमा तक मालिक (श्रीबाबूजी) के प्यार की निगाह हमारे ऊपर सीधी पड़ने लगती है। हमें हर पल लगता है कि हम ईश्वर में विलीन हुये जा रहे हैं। यह भी अलौकिक दृश्य मैं पा रही हूँ कि श्रेष्ठतम दशाओं के परमानन्द में विलीन रहते हुये मैं अपना रूप और नाम ही भूल गई और एक दिन ऐसा भी 'श्रीबाबूजी' मेरे लिये लाये कि जब कोई राम को पुकारे, कृष्ण को पुकारे, ईश्वर को पुकारे तुरंत मेरा मुख उठ जाता था। तभी मैं यह भेद भी जान पाई कि ''अवतार ईश्वरीय–क्षेत्र या केन्द्र की शक्ति से अवतरित होते हैं। अजीब रहनी हो जाती है कि 'मैं' शब्द अपने अस्तित्व का स्पर्श ही नहीं पाता है। जब कार्य का होश नहीं हो और समक्ष में ईश्वरीय–प्रत्यक्षता में डूबी निगाह हो तो फिर उसके दरबार से क्षमा ही क्षमा बरसती है। गल्तियों का भाँडा फूट जाता है– दोष, गुण से परे हुये हम दैविक–दृष्टि या शक्ति की सीधी किरण में पलते हैं। आप ही बतायें कि नियम कहाँ पर अभ्यासी में लागू हो सकते हैं– बल्कि वे लय–अवस्था में भी लय हुये, फ़नाइयत में भी फ़ना हुये हर दैविक–दशा की सीमा का भी उल्लंघन करते चले जाते हैं। मैंने पाया कि 'सादगी' का ही पसारा रह जाता है समक्ष में। न लाग न लपेट न कुछ न कुछ। बंदगी भी होश खो बैठती है। दशा क्या है मानो भोलापन या मासूमियत की विशुद्ध–दशा भी हममे लय होकर, अपना अस्तित्व खो देती है। हर हालत का यही हाल है कि सब कुछ ''आदि Nature में ही लय हो जाता है''। मैंने इस पुस्तक के लेखन में यही सत्य उज्ज्वल हुआ पाया है कि हमारे मिशन के दस नियम, नियम के बंधन से मुक्त हैं और श्रीबाबूजी की दैविक शक्ति की charging में डूबे हुये हम अभ्यासियों को सहज ही इनसे परे अर्थात् साक्षात्कार की हालत में ले जाते हैं।

मैं तो आज यही आदि सत्य प्रत्यक्ष हुआ पा रही हूँ कि ''ध्यान मानो उनका Divine मुख है। सफ़ाई में मैंने पाया कि उनका हृदय

ही शुद्धता का सागर है तथा चरण मानो प्रार्थना का आगार हैं। अर्थात् सहज–मार्ग--साधना की वे सजीव प्रतिमा हैं। ऐसे ही मैंने पाया कि उनका heart ही हमारा Heart-Region है। 'उनके' विचारों में हमारा सतत्–पालन ही हमारे लिये Mind-Region है और इस प्रकार अंतिम सत्य के 'वे' स्वयं प्रतीक हैं। यही कारण है कि उनके ध्यान की तन्मयता से जन्मी उनके Divine सारूप्यता की दशा में हम प्रवेश पा लेते हैं तभी मानो नियम नौ की दशा हमारे अस्तित्व में उज्ज्वल हो उठती है। 'श्रीबाबूजी' के कथनानुसार शक्ति हमें ख़्याल से मिलती है। जब हमारा ख़्याल (याद) उनसे जुड़ जाता है तभी से हमारे विचारों में फिर रहनी में एक natural balance पैदा हो जाता है जो आदि–प्रकृति की प्रकृति से मिला–जुला रहता है। फिर यही चीज़ हमारी nature के साथ व्यवहार में उतरती आती है। यही कारण है कि हमारे मानवीय–व्यवहार में समानता पैदा हो जाती है। 'श्रीबाबूजी महाराज' का कथन कि ''मिट्टी के खिलौने बनाने वाले को अपने खिलौनों का प्यार बेहद होता है और मिट्टी की फिक्र होती है। इसी प्रकार ईश्वर को अपने बनाये हुये जीवों के प्रति सहज–आकर्षण होता है। इसलिये उसके ध्यान में लय रहते हुये हमारे में भी वह दैविक–सहज–आकर्षण उतरने लगता है। ऐसी स्थिति में ही मैंने पाया कि हर एक की निगाह हमारे प्रति प्यार भरी होने लगती है। ईश्वरीय–फिक्र का ही यह फल है कि समयानुसार, प्रकृति की आवश्यकतानुसार समय–समय पर यहाँ अवतारों का आगमन हुआ है। ईश्वरीय–लगाव या ईश्वरीय–प्रतीति का कदाचित् लोप–प्रायः होते जाने के कारण ही समर्थ–गुरु लालाजी सा. की प्रार्थना के फलस्वरूप श्रीबाबूजी महाराज का अवतरण प्राणिमात्र के अंतर में पुनः ईश्वरीय--प्रतीति का होश भरने के लिये एवं अपनी दैविक–ईश्वरीय–धारा का प्रवाह अंतर में प्रवाहित करके पुनः ईश्वरीय–परिचय देकर दैविक याद को ताजा कर देने के लिये ही हुआ है। यही कारण है कि उनके प्रथम साक्षात्कार में दैविक–आकर्षण एवं ईश्वरीय–छवि के सौंदर्य

की गरिमा को पाकर उनके ही प्यार द्वारा मेरे मन ने उनसे प्रेम करने के लिये मुझे मजबूर कर दिया। 'उनकी' यह कशिश ही वास्तव में दैविक–प्यार बनकर हमारे अंतर में छलक कर मानो अपने मिशन के नवें नियम के सौंदर्य से हमारे अभ्यासी–जीवन एवं रहनी को आलोकित कर देती है। अब नवां नियम अपनी आप–बीती मानो हममें उड़ेल कर स्वतंत्रता की नींद में सो जाता है।

■■■

➲ ईश्वर की व्याख्या यही हो सकती है कि यदि संसार के सभी विशेषण हटा दिये जायें तो जो कुछ शेष रह जायेगा वह ईश्वर है।

– श्री बाबूजी

दसवां नियम

अगर कोई अपराध भूल से हो जावे तो सोते समय ईश्वर को अपने सन्मुख समझ कर उससे दीनता की हालत में क्षमा माँगे और पश्चाताप करें और उसके लिये प्रार्थना और कोशिश करें कि आइन्दा कोई अपराध न होने पावे।

वास्तव में साधना वही है जो मानव–प्रकृति को संत–प्रकृति में बदल देती है। सहज–मार्ग का दसवाँ नियम साधक को ऐसा ही संकेत दे रहा है इसीलिये श्री बाबूजी ने भूल से भी अपराध हो जाने की बात लिखी है। सोते समय भूल को सुधारने की प्रार्थना करने का भी एक महत्व है– वह यह है कि प्रार्थना के मूड में सो जाने से पूरी रात्रि अपराध की भावना से हम मुक्त रहते हैं। फिर प्रातः उठने पर हृदय का जो हल्कापन एवं विशुद्धता के आनन्द का भाव (feeling) होता है तो फिर वैसी ग़लती दुबारा न हो, इसके लिए मन स्वतः प्रयत्नशील रहने लगता है।

सहज मार्ग साधना को अपनाने पर ही मैंने पाया कि कैसा अनूठा होता है Divine प्यार, कैसी अनूठी होती है आदि सादगी में लिपटी Divine जीवन–रहनी, कैसी अद्भुत होती है वह दैविक–मानव प्रकृति जो कुल प्रकृति का स्वामित्व पाये होने पर भी मानो शुद्ध–मानव–प्रकृति को ही अपनाये रहती है। ऐसे मेरे श्रीबाबूजी महाराज आध्यात्मिकता में Divine क्षेत्र में अभ्यासी को पैराव देने में कमाल पाये हुये, समर्थगुरु लाला जी सा. के लाल एवं भूमा को गौरवान्वित करने वाले भूमा के गोपाल रूप में आदि–शक्ति पर स्वामित्व पाये ऐसे विचर रहे थे जैसे हमारे लिये तब 'वे' मात्र बाबूजी ही थे। आज वह आदि–सादगी जो 'उनका' नक़ाब कहलाती थी, वह आदि–शक्ति, जो उनमें खिलकर ईश्वरीय–धारा के रूप में अभ्यासी–अंतर में प्रवाहित हो रही है वही इस लेखिनी द्वारा उनके

दिव्य–रहस्य को लिख सकी है कि 'कौन थे वे'। आज यह लेखिनी उनके प्यार का पावन–स्पर्श पाकर पुनः मचल उठी है लिखने को कि 'कौन थे वे'? जो प्राणीमात्र के हित निवेदित थे। जानते हैं क्यों? उनके दिव्य–अवतरण का कारण था creator की इच्छा कि 'प्राणीमात्र में पुनः ईश्वर–प्राप्ति की तरस जाग उठे'। इस आदि Will को पूर्ण करने के लिये ही समर्थ की प्रार्थना द्वारा अनन्त शक्ति की गरिमा के सौंदर्य में नहाई एवं Ultimate की शक्ति से सम्पन्न दिव्य–विभूति धरा पर Divine कार्य के लिये श्रीबाबूजी महाराज के रूप में क्रियान्वित हो उठी। यही कारण है कि उनके Divine submission के आगे सम्पूर्ण आध्यात्मिक–विज्ञान के साथ original अर्थात् भूमा के विज्ञान के सहित आदि–शक्ति के विज्ञान ने भी जैसे उनके समक्ष अपना हृदय खोलकर बिछा दिया। इसलिये मैंने लिखा है कि 'मिशन के दस नियम Realization प्राप्त करने में अभ्यासी के आंतरिक–दैविक–सौंदर्य का प्रतीक है। ईश्वर–प्राप्ति के लिये आदि–प्रकृति की दैविक छटा मानवीय–प्रकृति को बाबूजी की पावन प्राणाहुति के प्रसाद द्वारा तैयार कर देती है। इतना ही नहीं मैं एक भेद यह भी अब जान पाई हूँ कि श्रीबाबूजी महाराज द्वारा आदि–सौंदर्य एवं शक्ति से charge हमारे मिशन के दस नियमों की गतियों का सौंदर्य सहज ही हमारी जीवन रहनी को natural living में ढालकर फिर आदि–प्रकृति को सौंप देती है। तभी एक दिन हमारा मानव–जीवन परम–लक्ष्य में समाकर सुधन्य हो जाता है।

'सहज–मार्ग के सारगर्भित दस नियम' लिखते समय मैंने यह दशा भली–भांति प्रत्येक नियम में फैली पाई है कि हर हालत में हम ईश्वरीय–शक्ति से ही योग पाये रहें। वह हमारा मालिक है, इष्ट है और हम सेवक एवं भक्त हैं। यह अनूठा एवं दैविक–रिश्ता हमें याद रहे ताकि हम उसके द्वारा पाई हुई किरणों से पावन होते रहें। हमारे श्रीबाबूजी ने मानव की सहायतार्थ अपने दसों नियमों में इस आदि–रिश्ते

को सजीव रक्खा है और विशेषता यह भी है कि अपनी दैविक–शक्ति की charging से उन्हें एक दूसरे से ऐसा गूथ दिया है कि यदि हम एक का पालन करें तो उनकी शक्ति की charging हममें उस आदि–रिश्ते यानी भक्त और भगवान, स्वामी और सेवक के रिश्ते को सचेत करते हुये क्रमशः जागृति देने लग जाती है। सत्य तथ्य है कि जब वह स्वामी हैं तो हम प्रार्थी ही हैं। श्रीबाबूजी द्वारा सहज मार्ग साधना में भी प्रथम ध्यान, दूसरा सफ़ाई, तीसरा प्रार्थना है। सबका अभिप्राय भी एक दूसरे से मिला–जुला है। अर्थात् दिन में जो ग़लती हुई है उसके लिये क्षमा माँगे, मिशन का दसवाँ नियम वाह्य–रहनी की शुद्धता को बताता है। उधर सहज–मार्ग–साधना में बतलाया गया है कि सफ़ाई के हित "समक्ष में श्रीबाबूजी महाराज बैठे हैं– उनके हृदय से ईश्वरीय धारा का पावन–प्रवाह हमारे हृदय में आ रहा है और ईश्वर–प्राप्ति का जो लक्ष्य उन्होंने हमें दिया है, उसमें बाधक हर unwanted thing wash होती हुई बाहर जा रही है।" ऐसा करने में Divine के प्रति आत्म–निवेदन का भाव जरूरी है इसमें हमारे अनजाने ही वह जुड़ जाता है जो हमें मानो उसके और भी निकट ले आता है जिससे श्रीबाबूजी द्वारा फूँका गया दैविक रिश्ते का प्राण हममें स्वतः जागृत हो उठता है। जिसके फलस्वरूप हमारे अंतर में Divine के प्रति एक अनजाना लगाव पनपने लग जाता है। यह है हमारे मिशन की सहज–मार्ग–साधना का सजीव फल जो हममें फलीभूत होकर भक्ति–रस से परिपूर्ण होने लगता है। फलस्वरूप नित नवीन चाहना मिलन की राह में तेज़ी लाती जाती है। मिशन के नियम की प्रार्थना में और मिशन में सहज–मार्ग–साधना की प्रार्थना में अंतर है और बहुत बडा भी कहा जा सकता है। वह यह है कि नियम से जुडी हुई प्रार्थना तो हमारी दैनिक–रहनी को बनाने से सम्बन्धित है और दूसरी हमारे सहज–मार्ग की प्रार्थना है जो ईश्वर–प्राप्ति के हित लक्ष्य से सम्बन्धित है, जो हमारी आंतरिक–रहनी को ईश्वर–प्राप्ति के योग्य बनाती हुई इसे अंतर–मन में विराजे Divine से ही योग देती जाती है।

अब मिशन के नियमों के अतिरिक्त जो हमारे सहज–मार्ग system की साधना में श्रीबाबूजी महाराज ने तीन मुख्य बातें ध्यान, सफाई और प्रार्थना हमें दी हैं– उनमें से सफ़ाई, एवं प्रार्थना के बारे में तो मैं लिख चुकी हूँ। ध्यान में हृदय में ''ईश्वर है'' का भाव लेकर बैठना होता है। सहज–मार्ग में उक्त तीनों के भाव को श्री बाबूजी ने ऐसे गहन सम्बन्ध से जोड़ा है कि एक का पालन होते ही दूसरे की दशा स्वतः ही हमारे में खिलने की कोशिश करने लगती है। यह बात इस बात का साँचा प्रतीक है कि श्रीबाबूजी महाराज ने इन्हें भी अपनी Divine power से charge कर दिया है। तभी तो अभ्यास में ठीक तौर से साधना अपनाने से सर्वप्रथम तो जिस ईश्वर के लिये हमारा यह प्रश्न रहता था कि ''बाबूजी, हमने ईश्वर को देखा नहीं है फिर उसका ध्यान हम कैसे करें?'' 'श्रीबाबूजी' के श्रेष्ठ–कथन का भोलापन इस सत्यता को उज्ज्वल कर देता है कि ''मैंने अंतर में ईश्वर की मौजूदगी का ध्यान ही सतत् रखने को कहा है ध्यान करने को नहीं कहा है– दूसरे यदि तुम्हें ईश्वर–प्राप्ति का लक्ष्य दिया है तो उसकी प्राप्ति हेतु जिन बातों की जरुरत है वह सब 'उसका' ध्यान हृदय में रखने पर ही हृदय में सहज ही पनप उठती हैं। श्रीबाबूजी ने कहा है कि जैसा तुम कहते हो कि ''राम का ध्यान कर लें'', कृष्ण का ध्यान कर लें, तो क्या तुमने उनका दर्शन पाया है? और यदि पाया है तो ध्यान रहेगा ही, ध्यान करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। फ़ोटो के ध्यान को तुम राम का ध्यान नहीं कह सकते हो क्योंकि वह तो किसी कलाकार की कृति है जो उसने अपने मन की रूचि के अनुसार बनाई है। मीराबाई ने, भक्त कबीर ने, गोस्वामी तुलसीदास या अन्य भक्तों ने गिरिधर को अपने ध्यान एवं प्यार के घेरे में भर लिया था अपने प्रेम रूपी धागे से अपने गिरिधर को अपने मन में ही प्रतिष्ठित कर लिया था। तभी तो एक दिन ज़रूर आया और आना ही पड़ा, जबकि दर्शन की चाह ने हृदय की अधीरता की सीमा को लाँघ दिया था या यों कहें कि स्वयं

उसका (चाह) अपना होश ही खो गया था। बस यही गहन–रहस्य है भक्ति का कि भक्त का खोया हुआ होश फिर कभी वापस नहीं लौटता है। अपने राम के दर्शन में ही रम जाता है। तभी मेरे अनुभव ने जाना कि मेरा राम एवं मेरे बाबूजी तो समस्त में रमे हुये हैं, सर्वव्यापी हैं– यह होती है साक्षात्कार की परम–दशा प्राप्ति की घड़ी। बाबूजी से मेरी प्रार्थना है कि सभी के लिये ऐसा दिव्यानन्द सुलभ हो सके। हृदय में ईश्वरीय–समीप्यता पाकर ईश्वरीय–प्रकाश से पहले तो हृदय, फिर क्रमशः हमारा कुल system प्रकाशित हो जाता है। ईश्वरीय–ध्यान को हृदय में सतत् मौजूद पाते रहने से naturally ही बाधक बातें हमारे अंतःकरण से साफ़ होती जाती हैं और मानो जीव का natural सम्बन्ध ईश्वर से पुनः सम्बद्ध होकर हमारे कुल system को ऐसी आँख बना देता है कि फिर अंतर, बाहर हमें दर्शन ही दर्शन की दशा व्याप्त मिलने लगती है। दृष्टि अंतर्मुखी होकर ईश्वरीय–छवि में समाहित हो जाती है।

इतना ही नहीं ध्यान रखते–रखते एक दिन जब ध्यान में से सब कुछ मिटकर मात्र Divine रह जाता है तब मैंने पाया कि यही पता नहीं लगता है कि मैं उनका ध्यान कर रही हूँ या Divine स्वयं के ख़्याल में मेरा ख़्याल समा गया है। एक अचरज यह भी अपने बाबूजी को मैंने लिखा कि "जब भी रात में सोते से आँख खुलती है तो लगता है मैं Divine के पास से लौट कर आई हूँ और होश को व्यवस्थित होने में थोड़ा समय लग जाता है"। तो मेरे बाबूजी ने मुझे लिखा था कि "तुम्हारा पत्र मिला– उत्तर यह है कि तुम सुषप्ति–अवस्था में गहरी जाती हो। यह अवस्था तुम्हें मुबारक हो। और आगे लिखा कि "खुशी है कि Divine Nature तुम्हारे में साँस लेने लगा है"।

अब आप ही बताइये कि सहज–मार्ग–साधना के मात्र ध्यान ने हमारी मानवीय–nature को कितनी करवटें दिलवाई? और

अहं से आइडेन्टिटी तक

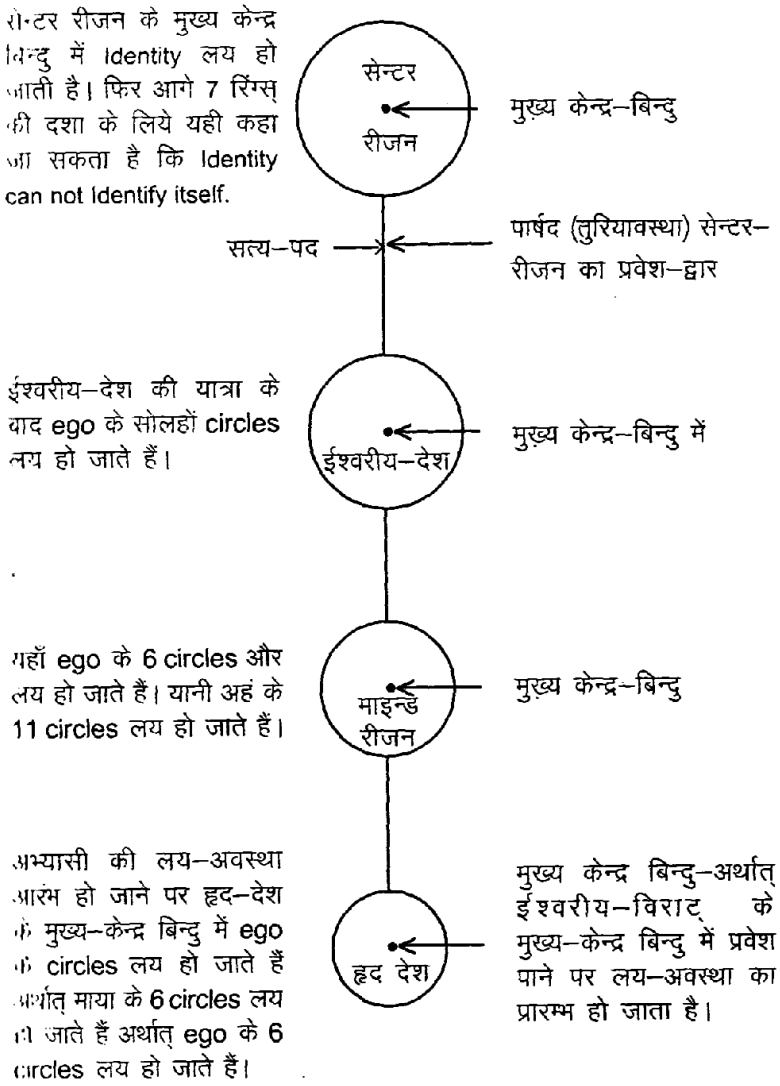

नीचे से ऊपर की ओर

दैविक–वरदान में हमें क्या मिला कि ''मानवीय संकुचित–Nature से विराट्–Nature की स्थिति, पुनः विराट्– Nature से Divine Nature की रहनी और अंत में हमारे बाबूजी ने आदि– Nature में रहनी प्रदान करके अपनी इस बिटिया को आदि–शक्ति की चौखट के भीतर ला कर खड़ा कर दिया एवं अपने चरणें में स्वीकार करके Ultimate की पहिंचान दे दी है। श्रीबाबूजी की दस 'उसूलों की शरह' नामक पुस्तक मानो आदि से लेकर अंत तक Nature का ही आईना है। प्रकृति का ही उज्ज्वल–करिश्मा है जिसे हमारे श्रीबाबूजी ने समस्त के हित उज्ज्वल करके समक्ष में फैला दिया है। आत्मा, परमात्मा में विलीन हो जाती है, जीव ईश्वर में समाकर identity के रूप में श्रीबाबूजी के Divine संकल्प में लय होकर Centre Region में swimming करने के बाद Centre Region के मुख्य केन्द्र बिन्दु– में समा जाती है। फिर शेष का भी अवशेष अर्थात् identity cannot identify itself के सहारे श्रीबाबूजी महाराज की प्यार भरी दिव्य–दृष्टि द्वारा power of source अर्थात् Ultimate के अनन्त–क्षेत्र में हम कहाँ व्याप्त हो जाते हैं पता नहीं। तो लीजिये अब श्रीरामचन्द्र मिशन में सदाचार के स्वरूप दस नियम अपनी वास्तविकता को हमारे समक्ष बिखेर देते हैं। श्रीबाबूजी महाराज की कृपा से इस लेखिनी में बद्ध होकर मेरी इस पुस्तक ''सहज–मार्ग में सदाचार के सारगर्भित दस नियमों'' के रूप में अब समस्त के हित आदि शक्ति या आदि–Nature के भी गहन–रहस्य एवं सम्पूर्णसार का खुलासा लेकर अब सबके समक्ष है।

■■■

''उपश्रृंगार''

कैसे दैविक–सलोने श्रृंगार से मेरी इस नवीन पुस्तक 'सहज मार्ग के सारगर्भित दस नियम' ने आंतरिक उप (श्रेष्ठ) श्रृंगार पाया है। मेरे अभ्यासी–जीवन ने दैविक–सामीप्यता की दशा का प्रथम पाठ तो ''ईश्वर हृदय में मौजूद है'' ऐसे ध्यान में सतत् डूबे रहने के अभ्यास से ही प्राप्त कर लिया था। प्रार्थना ने समर्पण का पाठ दिया और साक्षात्कार के अनुरूप विशुद्ध–हालत ने मुझे सायुज्यता की श्रेष्ठ दशा अर्थात् लय–अवस्था प्रदान कर दी जिसके भीतर ही मैंने सहज–मार्ग के दस–नियमों का श्रेष्ठ श्रृंगार भी अपने अंतर में उज्जवल हुआ पाया। हृदय में श्रीबाबूजी की दिव्य–प्राणाहुति धारा का सतत–प्रवाह एवं उनकी दैविक–दृष्टि की कशिश का योगदान पाते हुये ही आज मैंने अपनी पुस्तक को, जो साक्षात्कार–प्राप्ति के हित अंतर के उपश्रृंगार को परख पाने के लिये दैविक–माप के ही सदृश है आपके समक्ष स्वयं अपने को परखने हेतु रखा है। श्री रामचन्द्र मिशन में सहज–मार्ग के दस नियमों को मैंने पालन के बजाय आध्यात्मिक–उन्नति के माप दंड के रूप में ही अधिक पाया है। कारण मैंने यही पाया है कि ईश्वर–प्राप्ति की आंतरिक–कुरेदना हमें नियम–पालन सोचने का समय ही नहीं देती है वरन् जिस दिन दिव्य–साक्षात्कार की दैविक–घड़ी मेरे बाबूजी मेरे लिये लाये तो मैंने पाया कि अंतर मानो दसों नियमों के श्रृंगार से सज उठा था। अन्य संस्थाओं में संयम–नियम के पालनार्थ ही अधिक ज़ोर दिया जाता है ताकि साधक का अंतर दिव्यता–प्राप्ति के लिए तैयार हो उठे। जबकि मिशन में बाबूजी ने अभ्यासियों को 'हृदय में ईश्वर' मौजूद है का ध्यान रखने को कहकर मानो अभ्यासी के प्रथम विचार को दैविक attraction की कशिश से योग देने की कड़ी प्रदान की है। साथ ही सहज–मार्ग के दस नियम मानो अपनी प्रगति के श्रृंगार को मापने के सजीव–प्रतीक हैं।

आदि–प्रकृति से लेकर मानव–प्रकृति तक का सम्पूर्ण इतिहास सहज–मार्ग के दस नियमों में समाहित है। रचना के हेतु क्रियान्वित–शक्ति की धारा का flow नितान्त साम्य है– कभी कम नहीं, कभी ज़्यादा नहीं। संकल्प के एक ही झटके से यह प्रवाह स्वतः ही मूल–श्रोत से प्रवाहित हो

गया। युग बदल जाते हैं लेकिन आदि–शक्ति का प्रवाह एवं उसकी Nature नहीं बदलती है। यह बहाव constant है। मेरे अनुभव से यह प्रमाणित भी हो गया है कि सहज–मार्ग साधना को अपनाने के बाद प्रगति पथ पर सतत् अग्रसर होते हुए एक दिन एक समय ऐसा आया कि मैंने एक constant-flow अर्थात् सहज धारा में प्रवेश पा लिया। जब मैंने श्रीबाबूजी को अपनी इस दशा के बारे में लिखा तो उन्होंने उत्तर दिया कि ''अब तुम्हें किसी की मदद की ज़रूरत नहीं रह गई है, मेरी भी नहीं। Source से प्रवाहित शक्ति तुम्हें खुद अपनी ओर ले जायेगी। '' मेरी निगाह में तो वे ही समाये हुये हैं अतः मैंने लिखा कि ''आपमें लय–अवस्था पाकर ही मैं भूमा की चौखट चूम पाने तक आ सकी हूँ। मैं यह भी जान गई हूँ कि आपके कदमों का सहारा पाकर ही आपकी Divine Research के फलस्वरूप ही आज ऐसा दिव्य सौभाग्य प्राणीमात्र के हित संभव हो पाया है क्योंकि इस विषय में आध्यात्मिक क्षेत्र का कुल इतिहास मौन पड़ा है।

अंतिम सत्य (भूमा) एवं बाबूजी के लिखित ज़ात की पहिचान पाये बिना कोई वहाँ ठहर ही नहीं सकता था। आज आपकी प्राणाहुति–शक्ति का प्रवाह पाकर यह समस्त के लिए संभव हो गया है। वास्तव में उनके ही रूप में प्रगट हुई दिव्य–विभूति, प्रकृति को आदि–प्रकृत्ति से सजा देने के लिये एवं मानव–प्रकृति को Divine प्रकृति से सँवार देने के लिये पृथ्वी को सदा धन्य बनाती रहेगी। ओ बाबूजी! आपके चरण–द्वय की रज में लिपटी बेरंग चूनर को धारण कर यह धरा युग को आपके Divine सौंदर्य के विराट् स्वरूप की छटा से सुशोभित करती रहेगी। 'उनके' युग परिवर्तन के आवाहन में देर तो लग सकती है लेकिन यह सत्य भी प्रत्यक्ष है कि पृथ्वी सत्–युग अर्थात् ईश्वरीय युग का मुख अवश्य ही देखेगी – क्योंकि यह उनके प्रागट्य का दैविक संकल्प है।

कुल आदि–प्रकृति का विस्तार आध्यात्मिक–विज्ञान में निहित है। जिसने सहज–मार्ग–साधना द्वारा अंतिम सत्य (Ultimate) की झलक को ओढ़ लिया है, उसने ही मानो कुल आदि–प्रकृति के राज़ के साथ ही इसके चलन को भी पहचान लिया है– जिसका ज्वलन्त उदाहरण है श्रीबाबूजी महाराज द्वारा लिखित ''सहज–मार्ग के दस उसूलों की शरह''

जो मानों खुद उनकी पहचान का मात्र संकेत ही है। मैं भला कैसे यह पुस्तक लिख सकी हूँ– तो सुनिये– 'दिव्य – विभूति का दिव्य–मुस्कान–युक्त मुखारबिन्दु समक्ष में हो, लेखिनी उनका दैविक स्पर्श पाकर मदमाती सी चलती रहे तो पढ़ने पर आप यही तो कहेंगे कि मेरी इस पुस्तक 'सहज मार्ग के सारगर्भित दस नियम' ने आदि–प्रकृति को भी बेनक़ाब कर दिया है। सत्य ही है–

सोई जानइ, जेहि देहु जनाई॥
जानत तुमहि, तुमहि होइ जाई॥

इतना ही नहीं; उन दिव्य विभूति (बाबूजी महाराज) का बड़प्पन व समस्त के प्रति प्यार तो देखिये कि जो दशा अभ्यासी को दे देते थे या जो शक्ति (Power) प्रिसिप्टर (प्रशिक्षक) आदि को देते थे वह कभी वापस नहीं लेते थे। भले ही प्रिस्पेटर या अभ्यासी द्वारा कोई भूल भी हो जाये तो भी उनके मन में उसके प्रति यह विचार कभी नहीं आया कि शक्ति उससे वापस ले लें। एक बार मिशन के जनरल सेक्रेटरी ने श्रीबाबूजी से कहा कि 'अमुक प्रिसेप्टर ने यह ग़लती की है, उसकी शक्ति (Power) वापस ले लें।' श्रीबाबूजी ने तत्काल कहा कि 'यह मेरे लालाजी की शान के ख़िलाफ़ है। मैंने उनसे 'देना' तो सीखा है किन्तु 'वापस' लेना नहीं सीखा है।'' फिर बोले, 'यह तो डिवाइन नेचर है कि देकर वापस नहीं लिया जाता, दूसरे गुरु या शिक्षक का धर्म है 'देना', 'वापस लेना' नहीं। हाँ ''यदि वह ग़लती करता है तो शक्ति (Power) ख़ुद–ब–ख़ुद मुरझा (fade) जायेगी क्योंकि Divine में बख़्शीश है, आशीष है और प्यार है।'' वास्तव में 'वापस' शब्द तो आध्यात्मिक–डिक्शनरी में है ही नहीं। उनसे ही मैंने जाना है कि डिवाइन विचार अथवा संकल्प एवं डिवाइन–नेचर में इतना 'खालिसपन' है कि इसमें कुछ भी जोड़ा या घटाया नहीं जा सकता ।। इति॥

एक दिव्य–रहस्य अवतारों का

किसी के पूछने पर कि अवतारों को भी धरती पर प्रगट होने के लिये गर्भ में रहने का कष्ट झेलना पड़ता होगा?

बस तब से यह प्रश्न जो वर्षों पहले का सुना हुआ था, बहुधा मेरे अंतर में कहीं कुरेदना देता था– इस पुस्तक के लेखन के समय कई बार यह प्रश्न मेरे अंतर में कौंधा– अतः आज पुस्तक की समाप्ति के बाद मुझे लगा कि इस प्रश्न का उत्तर तो स्वयं Divine ही दे सकते हैं अतः लेखिनी हाथ में लेकर अपने 'बाबूजी महाराज' के समक्ष बैठ गई--बान्धवों तभी इस प्रश्न का हल मुझे मिल सका है – जिसे मैं समस्त के समक्ष रखने जा रही हूँ। प्रश्न यह उठता है कि दर्शन या साक्षात्कार जो भक्तों– मीराबाई, कबीर, तुलसीदास आदि ने पाया उसका अर्थ क्या है? तो सुनिये जो नज़ारा मेरे समक्ष में है। मैंने श्रीबाबूजी को अपने पत्र में लिखा था कि ''साक्षात्कार तो सामने है लेकिन मानवीय– शरीर से परे, सर्वत्र में व्याप्त विराट, ईश्वरीय–दिव्य–छवि ही समक्ष में व्याप्त हो गई है। अब शब्द विराट मानो अपनी स्पष्टता को स्पष्ट कर रहा है– जैसे कौशिल्या महारानी ने भगवान राम के अवतरण से पहले उनके विराट् रूप का साक्षात्कार पाया तो उन्होंने प्रार्थना की कि कीजिये शिशु–लीला अर्थात् उन्हें मानव रूप में बालक चाहिये, ऐसे दिव्य विराट्, परम–रूप को वे स्वीकार नहीं कर पायेंगी।

ऐसे ही कृष्णावतार के पहले देवकी एवं वसुदेव ने उस परम--शक्ति का विराट् दैविक–साक्षात्कार पाया फिर उनकी प्रार्थना के पश्चात्, बालक कृष्ण के रूप में वह विराट् छवि माता की गोद में आ गई। आख़िर इसका रहस्य क्या है– यह रहस्य आज मानो मेरी लेखिनी के समक्ष खुद ही अपनी बात रख रहा है– तो सुनिये! अवतार के उस दैविक मानव–स्वरूप का गठन प्रकृति स्वयं करती है इसीलिये प्रथम वह विराट् होकर कुल प्रकृति में छा जाता है। यही कारण है कि इस कुल प्रकृति में समाये हुये विराट् रूप का ही दर्शन या साक्षात्कार भक्तों को युगों तक जब तक कि दूसरा अवतार प्रकृति में नहीं समा जाता है सोहता रहता है। प्रकृति का एक रहस्य और भी मेरे समक्ष स्पष्ट हुआ

बता रहा है कि ''रानियों में तो गर्भवती के सारे लक्षण एक मामूली स्त्री के सदृश ही दिखाई देते हैं– जिन्हें प्रकृति स्वयं सँवारती है– यही कारण है कि अवतारों के लिये शब्द 'प्रगट होना' आता है अर्थात् स्वयं की मर्जी से 'प्रगट होना' – 'पैदा होना' शब्द कहीं प्रयोग नहीं हुआ है। यद्यपि संसार के हित दिव्य मानव–रूप के गठन का कार्य प्रकृति स्वयं करती है। तभी तो यह श्रेष्ठ–भौतिक रूप भी प्रकृति की छटा एवं तेज से भरपूर रहता है। पंच–तत्त्वों से परे, अणु अणु में प्रकृति की छटा को निखारे हुये, दिव्य–शक्ति के तेज से तेजोमय यह अलौकिक एवं अनुपम स्वरूप होता है। यह है अवतारों का दिव्य–रहस्य।

*

● अगर आप मुझसे पूछें तो मैं कह सकता हूँ कि विश्व सत्यता की अतिशयोक्ति है।

– श्री बाबूजी

*

एक नज़ारा

।। शाहजहाँपुर में बाहर श्रीबाबूजी के साथ बैठे हुए आँगन का।।

1. मुझे आज तेरी बहुत याद आये,
है कण–कण खिला दिव्य–सौंदर्य पाये॥

2. अजूबा तुम्हें हम ये कैसे बतायें,
रहाइश कहाँ और बैठे कहाँ हैं।
तसव्वुर में ख़ुद ही उतर जैसे आये॥

3. नज़ारा छुयें उनके आँगन का पलकें,
वो जल्वा बताये जो डूबा था उनमें।
वो बैठे हैं खुद को ही ख़ुद में छुपाये॥

4. थे खाटों पै हम बैठे घेरे थे उनको,
निगाहें नहीं छोड़ पाती थी उनको,
ये मुमकिन नहीं सुधि को वापस बुलायें॥

5. मुबारक हो मासूमियत को हँसी वो,
मुबारक लबों को महक हुक्के की हो।
चरण छू के धरती पुलक सी थी जाये॥

6. वो कौंधे की बिजली सी था तेज ऐसा,
कि भूमा भी छूने में छवि यों हिचकता।
नज़र भी डरे थी उन्हें लग न जाये॥

7. करिश्मा ये कैसा कि खुद सत्य–अन्तिम,
झुकाये था सर मानों बाबूजी हाकिम।
बतायेंगी सदियाँ करम तेरा पाये॥

8. मुबारक था वो दिन दिखाया जो करतब,
कि भूमा की ड्यौढ़ी पै मेरा था मख़तब।
मिटाया था वो सब पढ़ा के जो लाये॥

9. उड़े होश यादों को दुहरायें ऐसे,
तेरे प्यार का हो ये पैग़ाम जैसे।
कि हर आदमी द्वार तेरा है पाये॥

10. है रौनक़ से तेरे शमां जल गई है,
बतायें किसे रूह खुद खो गई है।
'संध्या' झलक तेरी नग़में हैं गाये॥

आभार नहीं प्यार

आज 'उनकी' मुस्कान को समर्पित है मेरी केसर बहिन जो श्री बाबूजी महाराज की अपेक्षा को पूर्ण करने में हर क़दम पर मेरी सहायक रही है। प्रारम्भ से लेकर अब तक मेरी प्रत्येक हिन्दी पुस्तक को शुद्ध और सुपाठ्य रूप से लिखकर प्रेस में देना, फिर पूरा प्रूफ देखकर, यथास्थान ठीक करके पुस्तक के रूप में समस्त अभ्यासी भाई–बहिनों के समक्ष लाने तक का पूरा काम वही करती रही है और आज भी कर रही है। इतना ही नहीं इन पुस्तकों का अँग्रेजी अनुवाद होने पर इनको सुपाठ्य रूप से लिखकर प्रेस को देना और उनका प्रूफ देखना आदि पूर्ण कार्य इसने (केसर ने) समर्पित संलग्नता से सम्पन्न किया है। मेरे छोटे भाई पी.डी. चतुर्वेदी ने भी हर प्रूफ–रीडिंग में काफ़ी लगन और परिश्रम का परिचय दिया है। आज श्री बाबूजी महाराज के ये बच्चे 'उनके' ही चरणों में स्वतः समर्पित हैं। 'उनका' वरद्–हस्त इन्हें ऐसे दैविक कार्य करने की शक्ति एवं सामर्थ्य से भरपूर रक्खे यही मेरी प्रार्थना है। प्रतिपल उन्नति पाते रहने का मेरा प्यार भरा आशीर्वाद सदा है उनके लिए और यही है मेरा आभार उनके प्रति।

कस्तूरी बहिन